सब का साथी

उपन्यासकार
यज्ञदत्त शर्मा

१९६०

साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा दिल्ली

सन्   : १९६०
मूल्य   : चार रुपये
प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा दिल्ली
मुद्रक   : रसिक प्रिंटर्स, करौलबाग, नई दिल्ली

[१]

इधर कई दिन से मैं एक उपन्यास प्रारम्भ करने की बात सोच रहा था। सोचते-सोचते बहुत-से पात्र और बहुत-सी घटनाओं का मस्तिष्क में जमाव हो गया है, परन्तु कहानी का तारतम्य सही नहीं हो सका।

मैं उपन्यास के कहानी-तत्त्व पर ही विचार करता-करता सो गया।

निद्रा में मैंने देखा कि मैं, मैं नहीं रहा, बल्कि रिटायर्ड प्रिंसिपल श्री यतीन्द्र बाबू बन गया। दिल्ली करौलबाग में मेरी शानदार कोठी है पूसा रोड पर और मेरी पत्नी का नाम रमा न होकर उमा है।

हमारा एक बच्चा है सतीश, बस तीन ही प्राणी हैं।

सतीश अभी छोटा है। इसका जन्म हमारे विवाह के ठीक २० वर्ष पश्चात् हुआ था। इसलिए यह छोटा है और हम लोग वृद्ध हो गये।

उमा इधर कुछ दिन से बीमार चल रही हैं। डाक्टर ने उन्हें क्षय-रोग घोषित कर दिया है। इससे आजकल मेरा मस्तिष्क बड़ा परेशान रहता है।

आचार्य नरेन्द्र शर्मा, जिन्हें मैं और उनके सब परिचित आचार्यजी ही कहकर पुकारते हैं, मेरे घनिष्ठ मित्रों में से हैं। पारस्परिक जीवन के दीर्घकालीन सम्पर्क ने हम दोनों को दो तन और एक प्राण बना दिया है।

आचार्यजी की आजकल नित्य संध्या-समय की बैठक मेरे ही मकान पर होती है। संध्या समय हम दोनों साथ-साथ चाय पर बैठकर पहले देश-विदेश की राजनीति पर वार्तालाप करते हैं, देश के सामाजिक और

आर्थिक ढाँचे पर विचार करते हैं, नैतिक जीवन की समस्याओं पर बातें करते हैं और फिर घूमने के लिए अपने मकान के सामने वाले उस बागीचे में निकल जाते हैं, जिसके हर पौधे को उमा ने अपने हाथ से लगाया है।

उमादेवी आजकल बीमारी के कारण हमारे साथ-साथ बागीचे में नहीं आ पातीं, इसलिए इस घूमने में न तो अधिक मुझे ही आनन्द आता है और न आचार्यजी को ही।

आचार्यजी उमादेवी की अस्वस्थता से बहुत चिन्तित हैं और मेरा मन भी किसी अन्य कार्य में नहीं लगता। कभी भूल से कोई पुस्तक हाथ में उठा भी लेता हूँ तो घण्टों हो जाते हैं और वह पृष्ठ नहीं बदलता। कभी कुछ लिखने का प्रयास करता हूँ तो पैड लिए बैठा रहता हूँ और अंत में काग़ज कोरा ही रह जाता है।

मन में एक ही ध्यान रहा है कि उमादेवी बीमार हैं। बागीचे में घूमते-घूमते जब आचार्यजी कह उठते हैं, "अब उमा की तबियत कैसी है यतीन्द्र भैया ?"

"वैसी ही है आचार्यजी ! कोई विशेष अंतर तो दिखलाई नहीं दे रहा। डाक्टर साहब आश्वासन दे रहे हैं कि ज्वर शांत हो जायेगा, परन्तु कोरे आश्वासन-मात्र से क्या बनता है ?"

शास्त्रीजी ने आई० सी० एस० की परीक्षा पास की थी, परन्तु वह इतने स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे कि विलायत से लौटकर आपने सरकारी नौकरी की ओर से मुँह मोड़ लिया। अंग्रेजों की गुलामी करने की उन्हें उनकी आत्मा ने अनुमति नहीं दी।

उनके माता-पिता तथा अन्य सब सगे-सम्बन्धियों और इष्ट-मित्रों ने उनके इस स्वतन्त्र मत का विरोध किया और आपसे सरकारी नौकरी पर चले जाने का आग्रह किया, परन्तु आप अपने निश्चय से टस-से-मस नहीं हुए।

अन्त में लाचार होकर सबको मौन रह जाना पड़ा और आचार्यजी देशभक्ति और देश-सेवा के मैदान में उतर पड़े।

जिन दिनों आप भारत लौटे, देश में सरकार का दमन-चक्र बड़ी तीव्र गति के साथ चल रहा था। इस दमन-चक्र के साथ-साथ असहयोग-आन्दोलन भी तीव्रता पकड़ता जा रहा था। दमन-चक्र यदि कौंधती हुई विद्युत थी तो असहयोग आन्दोलन एक काला-काला विशालकाय तूफ़ानी बादल था जो उस दमदमाती हुई विद्युत को अपने कलेजे में समेटकर रख लेता था और वेग से आगे बढ़ता ही जाता था।

भारतीय जनता की स्वतन्त्र मनोवृत्तियाँ उद्वेलित हो चुकी थीं। सन् अठारह सौ सत्तावन में जनता को कुचलकर कुछ समय के लिए अचेत कर दिया गया था, परन्तु वह अचेतनता स्थाई नहीं थी, वह अस्थाई थी, रुक चुकी थी। राष्ट्र फिर से आँखें मलकर खड़ा हो रहा था, एक नई स्फूर्ति और नई चेतना के साथ।

देश का सम्पूर्ण वातावरण विदेशी-शासन के प्रति विद्रोह की भावना से भर गया था।

ऐसी दशा में राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचल डालने के लिए अंग्रेजी यन्त्र का एक पुर्जा बनाना आचार्यजी सहन नहीं कर सके।

आचार्यजी दृढ़ निश्चय करके राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ हो गये। उनके हृदय की दहकती हुई देश-प्रेम की ज्वाला उन्हें उन्हीं मनचलों में घसीटकर ले गई जो देश को स्वतन्त्र देखने के लिए दीवाने हो चुके थे।

आचार्यजी के इस मोड़ को देखकर राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने आपको हाथों-हाथ सम्मान के साथ अपने बीच ले लिया।

राष्ट्रीय नेताओं ने आपको तुरन्त एक देशव्यापी दौरे पर भेजा और इस दौरे में जहाँ-जहाँ भी आचार्यजी गये इनका बहुत बड़ा सम्मान हुआ। स्थान-स्थान पर सभाएँ आयोजित हुईं और उनमें

आचार्यजी ने धुआँधार भाषण दिये। देश में एक कोने से दूसरे कोने तक देश-भक्ति की ज्वाला को दहका दिया। आपके भाषणों की गर्मी से अंग्रेजी शासन की इस्पाती दीवारें भी गर्म होकर दहकने लगीं। शासन के पुतले उनके अन्दर बैठे-बैठे बेचैन हो उठे। उनका चैन हराम हो गया।

अपने इस तूफ़ानी दौरे के समय आचार्यजी हमारे नगर में भी [illegible] जिसों बम्बई में एंग्लो-संस्कृत महाविद्यालय का प्रिंसिपल था।

हमारे विद्यालय के विद्यार्थियों ने अपनी संस्था में आचार्यजी को आमन्त्रित किया और उस दिन की सभा का सभापतित्व करने के लिए विद्यार्थियों ने मुझ से आग्रह किया।

अपने बच्चों का आग्रह मैं अस्वीकार नहीं कर सकता था और फिर आचार्यजी से भेंट करने की भी मेरे मन में उत्कंठा थी, क्योंकि आपके नाम से मैं पहले से ही परिचित था।

विद्यालय में बहुत सुन्दर समारोह हुआ। आचार्यजी ने ओजस्वी भाषण दिया और देश के नौजवानों को भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का सिपाही बनने के लिए आमन्त्रित किया।

मुझ में कभी कोई भाषण सुनकर उत्तेजना पैदा नहीं होती, परन्तु यह सच है कि उस समय आचार्यजी का भाषण सुनकर कुछ समय के लिए मैं भी उत्तेजित हो उठा था।

भाषण के उपरान्त मैंने आचार्यजी को संध्या के भोजन पर आमन्त्रित किया और आचार्यजी ने मेरे निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

संध्या को भोजन पर आचार्यजी की मैं और उमादेवी प्रतीक्षा कर रहे थे। आचार्यजी के आने के समय में अभी देरी थी। हम लोगों ने कुछ पहले से ही प्रतीक्षा करनी प्रारम्भ कर दी थी।

आचार्यजी ठीक समय पधारे ।

मैंने और उमादेवी ने उनका स्वागत किया । उमादेवी मेरी पत्नी का नाम है ।

उमादेवी के चेहरे पर आचार्यजी की दृष्टि पड़ी तो वह सहज ही कुछ ठिठक गए । फिर [illegible] अपने को सँभालकर बोले, "अरे उमा ! तुम यहाँ, इस रूप में [illegible] जाओगी इसका तो मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था ।"

फिर मुसकराकर मेरी ओर देखकर बोले, "आप दोनों की जोड़ी बहुत सुन्दर रही । परमात्मा करे दोनों चिरायु हों ।"

उमा के नेत्र तनिक झुक गए ।

मैंने सरल स्वभाव में कहा, "उमादेवी आपकी इतनी परिचित होंगी इसका मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था । आप हमारे विद्यार्थियों को धन्यवाद दीजिए कि आप दोनों की उन्होंने यहाँ अचानक ही भेंट करा दी । वरना आप अपने तूफानी दौरे पर न जाने कहाँ और किधर खो जाते और उमादेवी को यह पता ही न चलता कि यह तूफ़ान मचाने वाले व्यक्ति कोई उसके अपने ही परिचित नरेन्द्र शर्मा हैं ।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी भावुकतापूर्ण स्वर में बोले, "आपके विद्यार्थी वास्तव में मेरी ओर से हार्दिक बधाई के पात्र हैं, जिनके निमन्त्रण के फलस्वरूप मैं उमा से भेंटकर सका और अब कुछ बातें भी कर सकूँगा । क्यों उमा ?" उमा की ओर मुँह करके बोले ।

आचार्यजी को सम्मान के साथ उमादेवी और मैं अन्दर अपनी बैठक में ले गये और फिर हमलोग भोजन के कमरे में चले गये ।

वहाँ दो आसन मेरे और आचार्यजी के लिए ही बिछे थे । तीसरा आसन उमादेवी के लिए नहीं था ।

दो आसनों को देखकर आचार्यजी बोले, "उमा ! क्या तुम भोजन नहीं करोगी ? तुम्हारा आसन कहाँ है ?"

उमा मुसकराकर अपनी चतुर बुद्धि से बोलीं, "मैं भी भोजन करने लगूँगी तो भोजन करायेगा कौन ?"

आचार्यजी मुसकराकर रह गये और फिर आसन पर बैठकर मुझसे बोले, "मुझे बचपन की बात स्मरण हो आई जब माताजी मुझे और उमा को पास-पास बिठलाकर भात खिलाया करती थीं। मैं सचमुच भूल ही गया कि यहाँ उमा, वह मेरे साथ बचपन में खेलने वाली लड़की नहीं है, इस घर की गृहिणी है।"

मैं हँसकर बोला, "बालकपन के जीवन में और आज के जीवन में यों अन्तर तो आकाश-पाताल का आ गया है, परन्तु उमादेवी हम लोगों के साथ आसन पर बैठकर भोजन न कर सकें, ऐसी कोई बात नहीं है।"

मैंने नौकरानी को तीसरा आसन लाने का आदेश दिया और उमा-देवी भी हमारे साथ भोजन के लिए बैठ गईं।

भोजन पर बैठकर आचार्यजी ने उमादेवी से पूछा, "माताजी और पिताजी आजकल कहाँ हैं उमा ?"

उमादेवी ने भारी मन से कहा, "माताजी और पिताजी दोनों का स्वर्गवास हो गया। पिताजी की मृत्यु का माताजी पर इतना गहरा आघात हुआ कि वह उनके पश्चात् दस दिन भी जीवित नहीं रह सकीं।"

इस सूचना को पाकर आचार्यजी के हाथ का कौर हाथ में ही रह गया और मुँह का कौर मुँह में। उनके नेत्रों में आँसू झलक आये और वह विह्वल शब्दों में बोले, "यह तुमने क्या कह दिया उमा ! क्या सचमुच आचार्यजी के दर्शन मैं अब नहीं कर सकूँगा और माताजी के चरण छूने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं होगा ?"

उमादेवी के भी नेत्र भर आये। उनके सम्मुख अपने माता-पिता की प्रतिमाएँ साकार खड़ी हो गईं। उन्होंने डबडबाये नेत्रों से आचार्यजी की ओर देखा और फिर साड़ी के पल्ले से अपनी आँखें पोंछ लीं।

भोजन के पश्चात् हमलोग बैठक में काफी देर साथ-साथ बैठे बातें करते रहे। अधिकांश बातें उमादेवी और आचार्यजी की ही हुईं। जाने कब-कब की जुड़ी हुई बातों का पिटारा खुल गया।

मैं भी उनकी बातों में रस लेता रहा। आचार्यजी का अपने गृहस्थ में प्रवेश मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों मेरे परिवार का एक सदस्य बढ़ गया।

उनकी बातों में आश्चर्यजनक आत्मीयता थी और स्वभाव में आकर्षण-शक्ति। एक-एक शब्द उनके मुख से निकलता था, तो लगता था, कि अमृत में डूबकर आ रहा है।

बस वह दिन था और आज का दिन है कि आचार्यजी का सम्बन्ध इस परिवार से दृढ़तर ही होता गया। हम सबने इस पारस्परिक प्रेम के पौधे को अपने स्नेह-जल से सींचा और वह आज इतना बड़ा और घना वृक्ष हो गया है कि उसकी शीतल छाया में बैठकर हम अपने जीवन के इस अन्तिम काल में सुख तथा शान्ति के साथ विश्राम कर रहे हैं।

तब से आज तक कभी कोई ऐसा अवसर ही नहीं आया कि जब हमारे मनों में कोई किसी प्रकार का अन्तर आया हो।

[२]

आचार्यजी तीन दिन से अपने मित्र राजा सुमेरसिंह की कन्या के शुभ विवाह में सहसपुर गये हुए थे। सहसपुर उत्तरप्रदेश के जिला बिजनौर की एक छोटी-सी रियासत थी।

आज उनके लौटने की सम्भावना थी। मैं अपने घर से बाहर बागीचे में कुर्सी पर बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

आचार्यजी का जीवन मेरे समक्ष दर्पण की भाँति खुला हुआ था। उनके त्याग, उनकी तपस्या, उनका साहस, उनका धैर्य, उनकी बुद्धिमत्ता, उनकी सहनशीलता, उनका उत्साह और विनोदप्रिय चरित्र मेरे सम्मुख एक आदर्श के रूप में खड़े थे। मैंने सचमुच अपने जीवन में इतनी श्रद्धा के साथ किसी अन्य व्यक्ति को नहीं देखा, जैसे आचार्यजी को देखा।

आचार्यजी ने राजनीति के मैदान में उतरते ही अपनी लाखों की सम्पत्ति राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अर्पण कर दी। पूरा जीवन देश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए अर्पण कर दिया।

और फिर जब देश स्वतन्त्र हुआ तो राजनीति को छोड़कर एक ओर खड़े हो गये। राजनीति के शहद में मक्खी के समान चिपके नहीं रहे।

आपके बहुत-से साथी आज अपने त्याग और बलिदान का बदला चुका रहे हैं, ऐश ले रहे हैं स्वतन्त्र भारत का। वे सब बड़े-बड़े बँगलों की बहारें लूट रहे हैं। कोठी के कालीनों से उतरकर उनके पैर कारों में बिछे पायदानों और वहाँ से उतरकर मंच पर ही पड़ते हैं, परन्तु आचार्यजी को यह सब देखकर कभी डाह नहीं होता।

उनके लगभग सभी साथियों ने अपने शानदार राजसी बँगले बनवा लिये हैं। उन्होंने अपने सैकड़ों साले, बहनोइयों और नाते-रिश्तेदारों की लाखों की सम्पत्तियाँ खड़ी करा दी हैं, बड़े-बड़े उद्योगपतियों की मिलों में ऊँची नौकरियाँ तथा कारोबारों में भागीदार बनवा दिया है। ये सब चीजें आचार्यजी को प्रिय नहीं हैं और न ही इनके प्रति उनका कोई आकर्षण है।

मैं आचार्यजी के विषय में यह सब सोच ही रहा था कि तभी मुझे वह दूर सड़क पर मेरे लड़के सतीश के साथ अपनी मोटी खद्दर की धोती को सँभालते हुए आते दिखलाई दिये।

मैं स्वभाव से ही उनका बागीचे के द्वार पर स्वागत करने के लिए खड़ा हो गया और घूमता हुआ द्वार तक जा पहुँचा। तब तक आचार्यजी भी निकट आ गये थे।

आचार्यजी मुझसे कौली भरकर बड़े प्रेम से मिले। हम फिर बागीचे में आ गये और आमने-सामने पड़ी दो कुर्सियों पर बैठ गये।

आचार्यजी ने कुर्सी पर बैठते ही पूछा, "उमा कहाँ है ? अब कैसी तबियत है उसकी ?"

ये दो प्रश्न आचार्यजी ने एक साथ किये।

मैं बोला, "अन्दर पलंग पर लेटी हैं। तबियत वैसी ही है जैसी आप छोड़कर गये थे। कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं है।"

आचार्यजी बैठ नहीं सके कुर्सी पर। वह बोले, "तो चलो वहीं चलकर बैठेंगे उमा के पास।"

हम दोनों उठकर उमादेवी के कमरे में चले गये।

उमादेवी को आचार्यजी के आने की सूचना पहले ही सतीश ने जाकर दे दी थी। वह अब पलंग पर बैठी थीं, लेट नहीं रही थीं।

उमादेवी ने आचार्यजी को नमस्कार किया। आचार्यजी नमस्कार का उत्तर देकर उनके चेहरे पर देखते हुए बोले, "आज तो, जिस दिन मैं गया था, उस दिन से कुछ स्वस्थ दिखलाई दे रही हो उमा ! क्यों ? ज्वर ने पिंड नहीं छोड़ा ? छूट जाएगा वह भी।"

"क्यों नहीं छूट जाएगा ?" मैंने आचार्यजी की बात को बल देते हुए कहा, "डाक्टर साहब का भी यही मत है।"

उमादेवी पलग पर बैठी रहीं और मैं तथा आचार्यजी सामने पड़ी दो कुर्सियों पर बैठ गये।

हम दोनों की बातें सुनकर उमादेवी धीरे से मुसकराकर बोलीं, "मैं क्या कोई बच्ची हूँ जो मुझे आप दोनों बहलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। ज्वर को छूटना होगा तो छूट जायेगा और यदि न छूटना होगा

तो आप दोनों के हाथों में मेरा यह शरीर शव बनकर ढुलक जाएगा। इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या कोई अन्य होगी मेरे जीवन में ?

"क्या मैं जानती नहीं हूँ कि हर प्राणी का एक दिन अन्त होता ही है ?"

"कैसी बातें कर रही हो उमा !" आचार्यजी बोले।

उमादेवी बात बदलकर मुसकराती हुई बोलीं, "आप अपने मित्र की लड़की की शादी में ऐसे जाकर रम गये कि यहाँ की कुछ सुध-बुध ही न रही आपको। एक दिन में लौटने को कह गये थे और आज पूरे तीन दिन हो गये।"

फिर मेरी ओर संकेत करके वह मुसकराती हुई बोलीं, "इन्हे देख रहे हैं आप। तीन दिन आपकी राह देखने में इन्होंने तीन वर्ष के समान काटे हैं।"

आचार्यजी भावुकतापूर्ण स्वर में बोले, "भैया यतीन्द्र ! तुमसे तीन दिन के लिए बिछुड़कर आत्मा को बड़ा कष्ट हुआ। तीनों दिन संध्या को मन तुमसे मिलने के लिए ऐसा छटपटाया कि जी चाहा उड़ कर तुम्हारे पास आ जाऊँ, परन्तु इतनी दूरी पर था कि यह सम्भव ही न हो सका।"

आचार्यजी की स्नेहपूर्ण बात सुनकर मैं आनन्द-विभोर हो उठा। मैं जानता हूँ कि उनके मुख से जो शब्द भी निकलते हैं वे उनके हृदय के अमृत-कुण्ड से निकलकर आते हैं। उनमें लोकाचार नाम-मात्र के लिए भी नहीं होता।

मैं प्रसन्नतापूर्वक बोला, "आपके यहाँ तीन दिन न रहने से मेरे जीवन के तीन दिन मुझे लग रहा है कि निरर्थक ही निकल गये। वे दिन कभी इस जीवन में फिर लौटकर नहीं आ सकेंगे !"

मैं फिर बात की दिशा बदलकर बोला, "कहिए, आपके मित्र

राजा सुमेरसिंह की कन्या का विवाह तो आनन्दपूर्वक सम्पन्न हो गया ? उसमें तो कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हुई ?"

मैंने विवाह का प्रसंग छेड़ा तो आचार्यजी के मस्तक पर सलवटें पड़ गईं। परन्तु वह तुरन्त ही अपने को सँभालकर मुसकराते हुए बोले, "विघ्न यतीन्द्र बाबू, बहुत गम्भीर पैदा हो गया था। उसीके कारण तो मुझे तीन दिन ठहरना पड़ा। वरना क्या यह कभी सम्भव था कि उमा को जिस दशा में मैं छोड़कर गया था, उस दशा में मैं तान दिन वहाँ रुका रहता ?

लड़की का भाग्य ही अच्छा था और वर योग्य था इसीसे राजा सुमेरसिंह पर आने वाली विपत्ति का बादल टल गया। वरना घोर संकट उपस्थित हो गया था।"

आचार्यजी की बात से मेरे और उमादेवी के मनों में बात को जानने की तीव्र उत्कंठा पैदा हो गई। उनका यह संक्षिप्त उत्तर हमारी जिज्ञासा की तुष्टि न कर सका।

मैंने मुसकराकर पूछा, "क्या कुछ देने-लेने का बखेड़ा खड़ा हो गया था ? लड़की के विवाहों में आमतौर पर आजकल ये ही मुख्य समस्यायें सामने आती हैं।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी खूब हँसे, खूब हँसे और फिर हँसते-हँसते ही बोले, "यतीन्द्र भैया ! आदमी पैसे के पीछे पागल हो गया है। उसने अपनी मनुष्यता को खो दिया है।

वर के पिता राजा सुमेरसिंह से दहेज में कम-से-कम पचास हजार रुपया नकद की आशा रखते थे और राजा साहब केवल तीस हजार ही जुटा पाये।

जब पचास के स्थान पर तीस हजार ही हाथ लगे तो वर के पिता बौखला उठे। वह बूढ़े भेड़िये के समान बड़बड़ाने लगे। उनकी आँखें चढ़ गईं और बदन काँपने लगा।

वह क्रोध में भरकर बोले, "राजा सुमेरसिंह ने मुझे सरासर धोखा दिया है। मैं इनका बड़ा नाम सुनकर धोखे में आ गया। इन्होंने तीस हजार रुपया देकर मेरे परिवार की मान-मर्यादा को जबरदस्त धक्का पहुँचाया है। मैंने आज तक अपने किसी लड़के की शादी में पचास हजार से कम पर हाथ नहीं रखा।

मैं यह अपमान कदापि सहन नहीं करूँगा।"

लड़के के पिता से उसके मामाजी का पारा और भी तेज हो गया। वह एकदम आपे से बाहर हो गये। वह लड़के के पिता से बोले, "देख लिया आपने ! मैंने इसीलिए यह रिश्ता लेने को मना किया था। सुमेरसिंह की दशा कितनी पतली है, यह मैं पहले से जानता था। उस समय आपने मेरे कहने का विश्वास ही नहीं किया। रतनगढ़ वाले आज भी अपनी लड़की देने को तैयार हैं और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह एक लाख से एक कौड़ी कम नहीं देंगे।"

लड़के के पिता और मामा के दिमाग़ सातवें आसमान पर चढ़े हुए थे। उन दोनों ने मिलकर निश्चय किया कि यह विवाह उन्हें तभी स्वीकार हो सकता है जब राजा सुमेरसिंह कम-से-कम पचास हजार रुपया नकद देने को तैयार हों, अन्यथा वे बारात वापस ले जायेंगे।"

विवाह का रंग भंग हो गया। आनन्द और उमंग के स्थान पर चिन्ता, शोक और घबराहट दृष्टिगोचर होने लगी। राजा सुमेरसिंह और उनके परिवार में दुराशा की लहर दौड़ गई। उनकी पत्नी शशिप्रभा का चेहरा उतर गया। घर-भर में शोक का सागर लहराने लगा।

यह बात राजा सुमेरसिंह की लड़की मनोरमा के कानों में पड़ी तो वह भी तिलमिला उठी। उसके आत्मसम्मान को गहरा धक्का लगा। वह सहन नहीं कर सकी इस अपमान को और चुपके से मेरे और राजा सुमेरसिंह के पास आकर खड़ी हो गई।

मैंने मनोरमा का दमदमाता हुआ क्रोधपूर्ण चेहरा देखा और धीरे से कहा, "क्या बात है बेटी मनोरमा ?"

मनोरमा सिर नीचा किये हुए ही धीरे-से बोली, "मैं यह सब क्या सुन रही हूँ चाचाजी ? ऐसी स्थिति में मैं यह विवाह करने को तैयार नहीं हूँ। आप इन लोगों से कह दीजिए कि बारात को वापस ले जायें।"

मेरा मन मनोरमा की बात सुनकर उसके साहस और आत्मसम्मान की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सका। मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "बेटी ! आपत्ति आने पर न तो घबराना चाहिए और न शीघ्रता ही करनी चाहिए। आपत्ति-काल साहस और धैर्य की परख करने के लिए आता है।"

तुम शशि के पास जाओ। जो होगा उसे हम देख रहे हैं। "तुम विश्वास रखो कि हम कोई कार्य ऐसा नहीं करेंगे जिससे तुम्हारे या भाई साहब के आत्मसम्मान को तनिक भी ठेस लगे।"

मनोरमा अपनी माताजी के पास चली गई।

मैं और सुमेरसिंह उपस्थित गम्भीर परिस्थिति पर विचार करने लगे। राजा सुमेरसिंह बोले, "आचार्यजी, मैं इन लोगों की नीच प्रकृति से पूर्व परिचित नहीं था, ऐसी बात नहीं है, परन्तु लड़के पर मुझे अभी भी विश्वास है कि वह मूर्ख बनने वाला नहीं है।"

राजा सुमेरसिंह की इस दृढ़तापूर्ण बात को सुनकर मैंने उनके चेहरे पर दृष्टि डाली और बोला, "तो क्या आपका विश्वास है कि वह अपने पिता और मामा की उपेक्षा करके भी विवाह करने को उद्यत हो सकेगा ?"

"यह असम्भव बात नहीं है आचार्यजी ! इतने शिक्षित युवक से क्या ऐसी आशा नहीं की जा सकती ?" राजा सुमेरसिंह बोले। वह मुसकरा रहे थे।

"की क्यों नहीं जा सकती !" मैंने दृढ़तापूर्वक कहा ।

हमलोग इसी चिन्ता में थे कि तभी सामने से श्रीमती मेरी आती दिखलाई दीं ।

उन्होंने कमरे में प्रवेश किया तो मैंने और राजा सुमेरसिंह ने खड़े होकर उन्हें सम्मानपूर्वक बिठलाया ।

श्रीमती मेरी राजा साहब की दूसरी पत्नी हैं । मैंने सम्मानपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और कुशल-क्षेम पूछा ।

वह मुसकराकर बोलीं, "आचार्यजी, आपको इतना समय आये हुए हो गया और दर्शन ही नहीं दिये, तो मैंने सोचा कि मैं स्वयं ही चलूँ आचार्यजी से भेंट करने के लिए ।"

फिर बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये ही राजा सुमेरसिंह की ओर मुँह करके बोलीं, "यह सब क्या झमेला खड़ा कर दिया आपने ? क्या बेटी मनोरमा के लिए आपके पास पचास हज़ार रुपया भी नहीं था, जो इतना अपमानित होने की स्थिति आई ?' और इतना कहकर उन्होंने एक लाख रुपये के नोट उनकी गोद में डालकर कहा, "यह रुपया फिर किस दिन काम आयेगा ? यह आपने मुझे विवाह के समय दिया था ।" कहकर उनके नेत्रों से आँसुओं की बूँदें टपक पड़ीं ।

मैं उस विदेशी महिला के चरित्र को देखकर आश्चर्य-चकित रह गया । अपने पति के सम्मान की रक्षा के लिए उसने वह रुपया अपने पति के चरणों में लाकर डाल दिया, जो विवाह के समय राजा सुमेरसिंह ने उन्हें भेंट-स्वरूप दिया था ।

राजा साहब के नेत्र श्रद्धा और लज्जा से श्रीमती मेरी के सम्मुख झुक गये । उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला ।

विवाह से पूर्व भी राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा को ज्ञात था कि श्रीमती मेरी के पास एक लाख रुपया है, परन्तु दोनों में से किसी का भी उनसे रुपये का प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ ।

मैं चुपके से वहाँ से उठकर कमरे से बाहर निकल आया और बागीचे में घूमने लगा।

बागीचे में सामने गुलाब की लम्बी कतार लगी थी और उस पर कई रंग के फूल खिल रहे थे।

मुझे यहाँ घूमते देखकर शशिप्रभा अपने कमरे से निकलकर मेरे पास आ गईं। वह बहुत घबराई हुई थीं।

निराश दृष्टि से मेरी ओर देखकर बोलीं, "आचार्यजी! अब क्या होगा?"

मैं उनके हृदय की धड़कनों को पहचानकर बोला, "सब कुशल ही होगा भाभी! तुम चिन्ता न करो। रुपये के लालची पिता का मस्तिष्क यदि सही न हुआ तो रुपया देकर ही उसका मुँह काला किया जायगा। श्रीमती मेरी को जब इस स्थिति का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अभी-अभी भैया को लाकर एक लाख रुपया दिया है।"

मेरी बात पर मानो शशिप्रभा को कानों पर विश्वास नहीं हुआ। परन्तु तुरन्त ही उनके हृदय में श्रीमती मेरी के प्रति अपार श्रद्धा उमड़ आई और वह वहाँ खड़ी नहीं रह सकीं। वह सीधी राजा सुमेरसिंह के कमरे में जाकर रोती हुई श्रीमती मेरी से लिपट गईं।

मैंने वह दृश्य अपूर्व आनन्द के साथ देखा उमा! मानो दो सगी बहनें आपस में खड़ी गले मिल रही थीं।",

मेरी दृष्टि तब उमादेवी के चेहरे पर गई तो मुझे लगा कि यह सुनकर उमा को असीम आनन्द की प्राप्ति हुई।

वर-पक्ष के लोग यह सोचते रहे कि सम्भवतः वर के पिता और मामा के एलान का राजा सुमेरसिंह पर कोई प्रभाव पड़ेगा, परन्तु राजा सुमेरसिंह ने जो कुछ कर दिया था उससे आगे वह एक इंच भी बढ़ने को तैयार नहीं थे।

भाँति-भाँति की काना-फूसियाँ चलती रहीं और धीरे-धीरे फेरों का समय आगया।

राजा सुमेरसिंह मुझे साथ लेकर विवाह-मण्डप में आये। मण्डप बहुत सुन्दर सजा था। केले के तनों के थमलों पर बेला और चमेली की कलियों का ऐसा वितान ताना गया था कि वही छत का काम दे रहा था।

यह सब देखकर मैं उससे बोला, "भाई सुमेरसिंह ! आप कर क्या रहे हैं, यह समझ में नहीं आ रहा ?"

मेरी बात सुनकर वह मुसकराकर बोले, "इसमें समझने की अब क्या बात रह गई है आचार्यजी ! अपमानित होने से तो आपने देख ही लिया कि प्रिय मेरी ने मुझे सुरक्षित कर दिया। अब मैं देख रहा हूँ कि इन लोगों में कितनी मानवता है और लड़के में कितनी समझदारी और प्रगतिशीलता।

मैं लड़के की परीक्षा लेकर ही कोई दूसरा पग बढ़ाऊँगा। शादी यह होगी ही, क्योंकि अब मैं पचास हजार के स्थान पर एक लाख तीस हजार रुपया तक देने की स्थिति में हूँ। पचास से दस हजार भी और बढ़ाकर मैंने साठ हजार कर दिए तो लड़के के पिता और मामा दोनों मेरे चरण चूमने लगेंगे।

"जिस रतनगढ़ की बातें यह मामाजी छौंक रहे हैं, उन लोगों की स्थिति मैं जानता हूँ कि आज दस हजार देने की भी नहीं रह गई है।" इतना कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़े।

समय और आगे बढ़ा। फेरों का समय बिलकुल निकट आ गया। तभी उनके पुराने मैनेजर ने आकर उनसे धीरे से कहा, "वर अकेला ही इधर आ रहा है।"

उसकी बात सुनकर राजा सुमेरसिंह प्रसन्नता से उछल पड़े। उन्होंने उत्साहपूर्ण स्वर में उससे कहा, "शशि रानी से जाकर

कहो कि मनोरमा को तैयार करें। फेरों के लिए वर आ रहा है और बाजे वालों से कहो कि वे वर के स्वागत के लिए आगे बढ़ जाएँ।"

"वर आ रहा है।" मैंने राजा सुमेरसिंह के पास को बढ़कर पूछा।

"जी आचार्यजी! लड़का अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। वह पूरी बारात को जनवासे में छोड़कर फेरों के लिए आ रहा है। इस बच्चे ने मेरे आशा-सुमन को खिला दिया।

आइये उसके स्वागत के लिए हमलोग कुछ और आगे बढ़ें।"

मेरे पैर प्रसन्नतापूर्वक आप-से-आप आगे बढ़ गए। मैंने मन-ही-मन लड़के के साहसपूर्ण प्रगतिशील विचारों की सराहना की।

हम दोनों थोड़ा ही आगे बढ़े थे कि इधर महल के द्वार पर बाजा बजना प्रारम्भ हो गया और वह बाजा वर के स्वागत के लिए धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

वर पैदल ही आ रहा था हमारी ओर। किसी प्रकार का विशेष बनाव-शृंगार उसने नहीं किया हुआ था, परन्तु फिर भी उसकी रूप-सज्जा आकर्षक थी। उसके चेहरे पर मुसकराहट थी।

हमारे सम्मुख आकर वर ने प्रणाम किया और राजा सुमेरसिंह ने प्रेमपूर्वक कहा, "आओ बेटा!"

हम दोनों वर को बाजे-गाजे के साथ विवाह-मण्डप में ले गए और दूसरी ओर से शशिप्रभा तथा श्रीमती मेरी बेटी मनोरमा को लाईं।

वर और मनोरमा दो आसनों पर बैठ गए और विवाह का कार्य-क्रम प्रारम्भ हो गया।

पंडितजी ने हवन-कुंड में अग्नि प्रज्वलित की और उसीको साक्षी देकर दोनों ने एक-दूसरे को अपने जीवन-साथी के रूप में ग्रहण किया।

महल में इस समय मंगल-गान गाये जा रहे थे। अभी थोड़ी ही देर पूर्व जो लोग चिन्ता-सागर में डुबकियाँ लगा रहे थे उनके हर्ष का इस समय पारावार नहीं था।

उमादेवी बोलीं, "तब तो यों कहिये आचार्यजी ! कि आपको एक सुन्दर नाटक देखने को मिल गया। परन्तु जब वर अकेला ही विवाह-मंडप में चला आया तो उसके पिता और मामाजी की क्या दशा हुई ?"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "उन लोगों से भी फिर जनवासे में नहीं ठहरा गया उमा ! थोड़ी देर पश्चात् वे दोनों भी अपने कुछ सगे सम्बन्धियों के साथ विवाह-मंडप में आ गये।

राजा सुमेरसिंह उन्हें मंडप के द्वार से आदरपूर्वक अन्दर लिवाकर ले गये।

विवाह-संस्कार आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

तभी सबने आश्चर्य के साथ देखा कि श्रीमती मेरी महल से निकलकर विवाह-मंडप में आ गई और मुसकराकर बोलीं, "विवाह की कार्यवाही इतने आनन्द के साथ पूर्ण हुई इसका मुझे हार्दिक सन्तोष है, परन्तु इस शुभ और प्रसन्नता के अवसर पर हमारे समधीजी का मन मलिन रहे, यह मैं सहन नहीं कर सकती।

हमारे समधीजी केवल बीस हजार रुपये की कमी में बारात वापस ले जाने को तैयार हो गये थे। ऐसी अशुभ बात बीस हजार रुपये के लिए उनके मन में आई इसका हमें हार्दिक खेद है। परन्तु हम आपको उदास मन लेकर अपने यहाँ से नहीं जाने देंगे।" इतना कहकर श्रीमती मेरी ने तीस हजार के नोट थाल में रखवाकर वर के पिता के पास भिजवा दिये और फिर मुसकराकर बोलीं, "अब ये साठ हजार हो गये। इनमें दस हजार हमारी समधनजी के लिए राजाजी दे रहे हैं।"

श्रीमती मेरी की इस बात पर विवाह-मंडप विनोदपूर्ण वातावरण से भर गया।

. वर-पक्ष की भी बाछें खिल गईं। उन्होंने अपने व्यवहार पर खेद प्रकट किया।

संस्कार के पश्चात् मैंने वर के साहस की प्रशंसा की। राजा सुमेरसिंह के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए मैंने वर-पक्ष के उपस्थित सज्जनों को बतलाया कि राजा सुमेरसिंह से उनका सम्बन्ध स्थापित होना उनके लिए गौरव की बात है।

उसके पश्चात् दोनों पक्षों के सम्बन्ध सुधर गये। पहले दिन जो दोनों के मनों में अन्तर आ गया था वह समाप्त हो गया। अब वर के पिता और उसके मामाजी बहुत प्रसन्न थे।"

विवाह का पूर्ण वृत्तान्त सुनकर मैं बोला, "बहुत ही रोचक घटना रही। वर ने वास्तव में सुशिक्षित और साहसी होने का परिचय दिया। नवयुवकों को चाहिए वे इन कुरीतियों का जमकर विरोध करें।"

आचार्यजी बोले, "देश के राजे-महाराजे पहले अपने बच्चों के विवाह इत्यादि पर आँखें बन्द करके व्यय करते थे। देश की जनता की गाढ़े पसीने की कमाई को अपनी ऐयाशी और शराबखोरी में लुटाते थे। राजा सुमेरसिंह के विवाह में मुझे स्मरण है कि शराब पानी की तरह बही थी। नाच-गाने का तो रियासत में बाजार लग गया था। जशन-पर-जशन मनाये गये थे। चन्द दिन के लिए वह छोटी नगरी इन्द्र का अखाड़ा बन गई थी।

विवाह में जो दान-दहेज मिला, उसका अम्बार लग गया था। नकद ही दो लाख रुपया मिला था। ये पुराने रीति-रिवाज धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं।"

आचार्यजी की बात सुनकर मैं हँसकर बोला, "समाप्त क्या

होते जा रहे हैं आचार्यजी ! यों कहिए कि उन्हें निभाने की सामर्थ्य ही नहीं रही उनमें। पहले उन्हें राज्यों की जनता की कमाई अपनी निजी ऐयाशी पर लुटाने की छूट रहती थी। अब वे रियासतें ही नहीं रहीं। सरकार ने जमींदार और राजा-महाराजा-वर्ग को समाप्त कर दिया।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी हँसकर बोले, "बात तो आपकी ठीक है सतीन्द्र बाबू ! रुपये के अभाव में मनुष्य की अनेक बुराइयां आप-से-आप दूर हो जाती हैं। इन राजे-महाराजों की ऐयाशी भी रुपये-पैसे के अभाव में बहुत कम हो गई है और हमारे देश का बहुत-सा धन जो ये लोग विदेशों में जाकर लुटा आते थे वह सब देश से बाहर नहीं जा पाता। मैंने विलायत में इन लोगों के जो रसरंग देखे हैं वे आपने यहाँ सुने भी नहीं होंगे और न ही आप उनकी कल्पना कर सकते हैं।

परन्तु मैं आपको बतलादूँ कि राजा सुमेरसिंह उस प्रकार के राजाओं में से नहीं हैं। मैंने सम्भवतः आपको राजा सुमेरसिंह के विषय में कुछ नहीं बतलाया।

राजा सुमेरसिंह ने उस समय भी, जब वह राजा थे और उनकी रियासत उनके हाथों में थी, कभी रियासत का रुपया अपनी ऐयाशी में खर्च नहीं किया। बहुत बड़ी रियासत नहीं थी उनकी, परन्तु व्यवस्था बड़ी सुन्दर थी।

सन् १९४२ के आन्दोलन में जब सरकार का गुप्तचर-विभाग पूरी सरगर्मी के साथ मेरा पीछा कर रहा था तो मुझे पूरे दो वर्ष तक उनके हाथों में न आने देने का श्रेय राजा सुमेरसिंह को ही है। यदि मैं उन दिनों सरकार के हाथ आ जाता तो निश्चित रूप से फाँसी पर लटका दिया जाता।

इसमें कोई सन्देह नहीं। मैंने भी गम्भीरतापूर्वक कहा।

आचार्यजी ने जो किस्सा सुनाया उस पर उमादेवी ने एक शब्द भी नहीं कहा। वह कुछ सोचती रहीं।

बातों-ही-बातों में पर्याप्त समय व्यतीत हो गया।

आचार्यजी की दृष्टि सामने लगे दीवार के घंटे पर पड़ी तो वह अचानक खड़े होते हुए बोले, "अरे! दस बज गये यह तो। राजा साहब की बातें किसी को सुनाने का जब मुझे कोई अवसर मिल जाता है तो मैं सब कुछ भूल जाता हूँ।

राजा सुमेरसिंह का जीवन प्रारम्भ से ही बड़ा दिलचस्प रहा है। कल प्रातःकाल घूमता हुआ इधर आऊँगा तो तुम लोगों को उनके प्रारम्भिक जीवन से परिचित कराऊँगा।"

और फिर उमादेवी की ओर मुँह करके बोले, "मैं अब चलूँगा उमा! कल प्रातःकाल आऊँगा।

औषधि तो बराबर ले रही हो ना! दवाखाने में लापरवाही न करना।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, औषधि खाते-खाते उससे ऊब गई हूँ आचार्यजी! जब देखती हूँ कि इससे कोई लाभ नहीं होता तो मन करता है कि उसे छोड़ दूँ।

"ऐसा कभी भूल कर भी न करना उमा!" आचार्यजी सतर्क होकर बोले, "इतना दुर्बल शरीर बिना औषधि की सहायता के चार दिन में उठने-बैठने योग्य भी नहीं रहेगा।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, इसीलिए तो नहीं छोड़ रही हूँ। यदि यह भय न होता तो कभी की छोड़ बैठती।"

आचार्यजी को मैं लगभग एक फरलांग तक छोड़ने गया।

[३]

मैं आचार्यजी को विदा करके लौटा तो उमादेवी लेटी हुई थीं। सतीश पहले ही सो चुका था।

मैं और उमादेवी कुछ देर आचार्यजी द्वारा सुनी गई राजा सुमेरसिंह की लड़की के विवाह की घटना पर बातें करते रहे।

मेरी अपेक्षा उमादेवी ने उस घटना में अधिक रस लिया।

मैंने कहा भी, "उमादेवी ! तुम तो इस घटना को सुनकर ऐसी प्रभावित हुईं जैसे यह तुम्हारे किसी बहुत ही आत्मीय जन पर बीती हो।

मेरी बात सुनकर उमादेवी बोलीं, "आपने सत्य ही अनुमान लगाया सतीश के पिताजी। मेरी आत्मा हिल गई इस घटना को सुनकर। इसका यह कारण नहीं कि दहेज लेना कोई असाधारण घटना मेरे सम्मुख आ गई। मेरे सम्मुख इससे भी कहीं अधिक बीभत्स घटनाएँ आ चुकी हैं। मैंने ऐसी पैशाचिक घटनाएँ सुनी हैं कि जिन्हें सुनकर हृदय मुँह को आता है।

सास, ससुर और पति तीनों ने मिलकर बहू को केवल इसलिए विष दे दिया कि उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे विवाह में अधिक दहेज मिलेगा। ऐसे व्यक्ति मैंने अपनी आँखों से देखे हैं।

राजा सुमेरसिंह के समधी बेचारे तीस हजार और पाकर ही तुष्ट हो गये।

मैं सोच रही हूँ कि इन्सान बड़ी विचित्र दिशा में जा रहा है। वह क्यों पैसे के पीछे इतना पागल हो गया है ?

मैं हँसकर बोला, "पैसा इस संसार के सब सुखों की प्राप्ति का साधन है उमा। पैसा बहुत आकर्षक वस्तु है। इसीलिए तो इसका मोह मानवता की सीमा को लाँघ जाता है। इसका चमत्कार नेत्रों की पुतलियों में समा जाने पर फिर किसी अन्य वस्तु के आने का स्थान नहीं रहता।"

यूँ ही बातें करते-करते उमादेवी को नींद आ गई। थोड़ी देर पश्चात् मैं भी सो गया।

प्रातःकाल मैं सोकर उठा। सतीश पहले ही उठ चुका था। वह अपने स्कूल जाने की तैयारी कर रहा था। महाराजिन ने चाय बना ली थी।

मैं धीरे से उठकर कमरे से बाहर आ गया। उमादेवी को आज कई दिन पश्चात् नींद आई थी। मैंने उन्हें जगाया नहीं।

परन्तु तभी आचार्यजी घूमते हुए आ पहुँचे और उमादेवी के कमरे में प्रवेश करके धीरे से बोले, "उमा! सो रही हो अभी तक। देखो सूर्य देवता निकल आये।"

उमादेवी आँखें मलकर तनिक धीरे से बैठी होती हुई बोलीं, "आज बहुत नींद आ आई। आज कई दिन पश्चात् इतनी गहरी नींद आई है।"

आचार्यजी उमादेवी के पलंग के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गये।

मैं कुल्ला-मंजन करके उमादेवी के कमरे में गया तो आचार्यजी को देखकर उन्हें प्रणाम किया और फिर बाहर आकर महाराजिन को चाय लाने का आदेश दिया।

चाय की प्याली हाथ में लेकर उमादेवी ने आचार्यजी से कहा, "कल आपने राजा सुमेरसिंह के साथ उनकी पत्नी शशिप्रभा का भी नाम लिया। इससे पूर्व राजा सुमेरसिंह का तो पारस्परिक वार्ता में कई बार जिक्र किया था, परन्तु कभी उनकी पत्नी का नाम नहीं लिया था।

क्या मैं जान सकती हूँ कि शशिप्रभा का बाँकीपुर के राज्य से तो कोई सम्बन्ध नहीं है ?

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी ने आश्चर्य के साथ उमादेवी के चेहरे पर देखा और फिर प्रसन्नतापूर्वक बोले, "शशिप्रभा बाँकीपुर के राजा अभयसिंह की इकलौती कन्या है। राजा अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् सहसपुर और बाँकीपुर की रियासतों का प्रबन्ध राजा सुमेरसिंह के ही हाथों में आ गया था।

परन्तु तुमने यह अनुमान कैसे लगाया उमा ?"

उमादेवी हँसकर बोलीं, "शशिप्रभा किसी समय मेरी अभिन्न सहेली रही है। परस्पर इतना प्रेम था कि एक दूसरी के बिना भोजन में स्वाद नहीं आता था।

एक दिन दुर्भाग्यवश मेरा और उसका एक छोटी-सी बात पर मनमुटाव हो गया और तब से फिर हमारी बातचीत नहीं हुई। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम दोनों का एक-दूसरी के लिए पारस्परिक स्नेह किसी प्रकार कम हो गया हो।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "शशि तुम्हारी अभिन्न सहेली रही है तो फिर मनमुटाव कैसे पैदा हो गया ? मैं तुम दोनों के ही स्वभाव से परिचित हूँ। तुम दोनों में ही शत्रु-से-शत्रु को मित्र बना लेने का गुण विद्यमान है। फिर कैसे ऐसी दुर्घटना घटी ?"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी पहले खूब हँसी, खूब हँसी और फिर सरल स्वभाव से बोलीं, "बचपन था आचार्यजी ! और क्या कहूँ उसे अब ? मेरी मूर्खता और भावुकता का ही परिणाम समझिये कि मैंने अपनी एक ऐसी सहृदय और स्नेहशील बहन को खो दिया।

एक दिन हम दोनों बाजार से दो गुड्डे और दो गुड़ियाँ लाये। फिर हमने उन दोनों के विवाह रचे और दोनों को बना-ठनाकर पास-

पास खड़ा कर दिया। दोनों जोड़ियाँ बहुत सुन्दर बनी थीं। शशि ने अपने गुड्डे को राजा का रूप दिया और गुड़िया को रानी का। मैंने अपने गुड्डे को एक विद्वान् आचार्य का रूप दिया और गुड़िया को विदुषी सुशिक्षित महिला का।

शशि अपनी जोड़ी को देखकर मुझसे बोली, "उमा! मेरी जोड़ी कितनी सुन्दर लग रही है! दूल्हे के चेहरे पर कितना तेज झलक रहा है!"

मैंने मुसकराकर कहा, "बहुत शशि! तुम्हारा दूल्हा बड़ा तेजवान और साहसी प्रतीत होता है। अब तनिक मेरे दूल्हे को भी देखो। कितना विचारवान व्यक्ति मालूम होता है! एक दिन संसार के विद्वानों में इसका विशिष्ट स्थान होगा।"

मेरी बात सुनकर शशि को अपने दूल्हे की प्रशंसा मेरे दूल्हे की अपेक्षा कुछ कमजोर प्रतीत हुई। उसने मेरी बात का अनुमोदन नहीं किया।

मैं तिलमिला उठी। मैंने शशि के चेहरे पर देखा और हृदय का पीड़ा को धीरे से दबाकर कमरे से बाहर चली आई।"

शशि भी मेरे पीछे-पीछे बाहर चली आई। हम दोनों उनके महल के सामने वाले बागीचे में निकल गये।

शशि बोली, "उमा! क्या तुम पौरुष को विद्वत्ता से छोटी वस्तु समझती हो?"

शशि की यह बात सुनकर मेरा ठेस खाया हुआ हृदय और भी तिलमिला उठा, परन्तु मैं मुसकराती ही रही और मुसकराकर ही उत्तर दिया, "छोटे और बड़े की बात तुम्हारे मन में क्यों आई शशि? यह उचित नहीं हुआ। यह बात तुम्हारे मन में आनी ही नहीं चाहिए थी।"

मेरी बात सुनकर शशि ने लज्जा का अनुभव किया। वह लजाकर महल में चली गई और मैं अपनी कोठी पर चली आई।

उस दिन मैं बहुत रोई, बहुत रोई। मुझे लग रहा था कि मेरी बड़ी बहन का देहान्त हो गया। शशि अब उसके लिए संसार में नहीं रही।

मैंने अन्त में एकान्त में अपने नेत्रों को पोंछकर अपने मन को सन्तोष देने के लिए कहा, "उभा ! बड़ों से क्या मित्रता ? मित्रता बराबर के स्तर पर होती है।"

अपनी पत्नी के मुख से उसके आत्म-सम्मान की बात सुनकर मेरा हृदय गर्व से फूल उठा। मेरी आत्मा को स्वर्गिक सुख तथा शान्ति प्राप्त हुई। जी चाहा कि उसका पुष्प जैसा मुख चूम लूँ। मेरी दृष्टि में श्रद्धा की फुहारें निकलकर उमादेवी पर बरसने लगीं।

उमादेवी की बात सुनकर पहले कुछ देर तो आचार्यजी का चेहरा गम्भीर बना रहा और फिर धीरे-धीरे उस पर मुसकराहट छाती चली गई।

वह मुसकराते हुए ही बोले, "मुँह पर प्रशंसा की बात नहीं उमा ! तुम्हारा बौद्धिक स्तर शशि से ऊँचा है, परन्तु केवल बुद्धि ही मानव में सब-कुछ नहीं है उमा ! शशि का हृदय बड़ा कोमल है। तुमने अपनी बौद्धिकता के कारण शशि के हृदय को बहुत बड़ी पीड़ा पहुँचाई है, ऐसा जान पड़ता है। शशि का हृदय इतना नर्म है कि उस पर एक बार स्थान बन जाने पर फिर वह उसकी चिता पर ही मिटेगा। शशि में बड़प्पन की बू लेशमात्र भी नहीं है। तुम्हारी बुद्धि ने शशि के हृदय को परखने. गम्भीर भूल की।

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी बोलीं, "अपनी इस भूल को मेरा मन बहुत दिन पूर्व स्वीकार कर चुका है आचार्यजी और शशि बहन के भावनापूर्ण हृदय को भी मुझसे अधिक समझने वाले कम व्यक्ति होंगे, परन्तु उसके वैभवशाली ऐश्वर्य की ऊँची दीवार को फाँदकर उसके निकट बने रहना मेरे लिए असम्भव हो गया।

मैंने उस दिन के पश्चात् जब भी शशि की ओर देखा तो मुझे यह प्रतीत हुआ कि शशि कैलाश पर चमकने वाला चन्द्रमा है और मैं हिमालय पर्वत की किसी गहरी खोह के अन्धकार में टिमटिमाने वाला जुगनू ।

इन दोनों का जीवन में क्या मेल ? कैसी मित्रता ?

उसके पश्चात् मैं कितनी कठिनाई से अपने को शशि के निकट जाने से रोक पाई, इसका क्या वर्णन करूँ आपसे ? कई बार मैं महल के द्वार तक गई, द्वार पर जाकर आत्मा ने अन्दर जाने की अनुमति नहीं दी और मैं बिना मिले ही लौट आई ।

आज इतने दिन पश्चात् आपने फिर शशि की स्मृति को मेरे मानस में ताजा कर दिया । मुझे इस समय लग रहा है कि वह मेरे समक्ष अपनी वेणी में चार गुलाब-पुष्प लगाये खड़ी मुसकरा रही है ।

आज रात्रि-भर मुझे मीठी नींद आई और उस मीठी नींद में मैंने इतना मीठा स्वप्न देखा कि मानो मेरे जीवन का प्रभात फिर से एक बार लहराता हुआ मेरे समक्ष आ खड़ा हुआ ।

मैं और शशि विद्यालय से साथ-साथ हमारी कोठी पर आए और वहाँ माताजी ने हमें पास-पास बिठलाकर नाश्ता कराया ।

फिर हम दोनों वहाँ से शशि के महल को चले गये और वहाँ बहुत देर तक बैडमिंटन खेलते रहे ।

मैं बैडमिंटन बहुत अच्छा खेलती थी आचार्यजी !

उसके पश्चात् जब लौटने लगी तो शशि की माताजी ने मुझे रोक लिया । वह मुसकराकर बोलीं, "तो क्या उमा बिटिया बिना भोजन किये ही भाग खड़ी होना चाहती है ? यह कभी नहीं हो सकता । भोजन बन चुका है । कुछ खा-पीकर घर जाना ।"

शशि की माताजी की आज्ञा को टालना मेरे लिए सम्भव न हुआ और फिर हम दोनों ने साथ-साथ बैठकर भोजन किया ।

भोजन के उपरान्त मैं अपने घर लौटी। मैं वहीं से लौटकर आ रही थी उस समय जब आकर आपने मुझे जगाया।"

यह सब सुनकर आचार्यजी हर्षित मन से मेरी ओर देखकर बोले, "शशि का व्यक्तित्व एक महान् व्यक्तित्व है यतीन्द्र बाबू! आपको जब मैं उनके जीवन से परिचित कराऊँगा तो आप स्वयं कह उठेंगे कि वह एक असाधारण चरित्र है।

एक भारतीय पत्नी का जो आदर्श स्वरूप शशिप्रभा ने प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

उमा शशि के उस बाल-काल की सहेली है, जब जीवन में समस्या नहीं थीं, संघर्ष नहीं था। वह तो एक पुष्प का जीवन था, जो सुन्दर-ही-सुन्दर था।

परन्तु मैंने शशि का वह जीवन देखा है जब उसने अपने अलौकिक चरित्र से अपने पति के नैराश्यपूर्ण जीवन को आमोद-प्रमोद की सरिता में स्नान करा दिया। जब उसने अपने पति पर आने वाले संकट-काल को उसी प्रकार मुसकराकर व्यतीत कर दिया जिस प्रकार राजसी ठाट-बाट का आनन्द-भोग किया था। वह जीवन रहा उसके संयम, समझदारी और त्याग का।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी शशि के जीवन की इन गुत्थियों को समझने के लिए तनिक उतावली-सी होकर बोलीं, "शशि के जीवन में समस्या और कठिनाई ने जन्म लिया? यह कैसे हुआ आचार्यजी?

मैंने तो सुना था कि उसका विवाह एक सुशिक्षित राजकुमार से हुआ और उसका जीवन बहुत सुखी है। बस इससे अधिक जानने का मैंने कभी प्रयास नहीं किया।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी बोले, "तुमने कुछ असत्य नहीं सुना। राजा सुमेरसिंह एक सुशिक्षित राजकुमार हैं। उन्होंने सर्वदा

अपने प्राणों के समान शशि को स्नेह किया है। केवल इतना ही नहीं, वह महान् श्रद्धा से शशि को देखते हैं।

परन्तु इस सबसे क्या ? समस्याएँ तो जीवन में अनेक प्रकार की आती हैं।"

समय काफी हो गया था। आचार्यजी खड़े होकर बोले, "इस समय मुझे चलना होगा उमा ! कुछ आवश्यक कार्य में लगा हूँ। इधर तीन दिन सहसपुर में लग जाने से डाक का ढेर लग गया है।

आज बैठकर सब पत्रों का उत्तर देना है। संध्या को अवकाश मिलने पर मैं इधर आऊँगा तो शशि और राजा सुमेरसिंह के विषय में आगे चर्चा चलायेंगे। मैं तुम्हें उन दोनों के जीवन से परिचित कराऊँगा। तुम्हें प्रसन्नता होगी सुनकर।"

इतना कहकर आचार्यजी खड़े हो गये। मैं भी उनके साथ-साथ कोठी के द्वार तक गया।

[४]

मैं आचार्यजी को विदा करके लौटा तो उमादेवी पलंग पर लेटी मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं।

वह मेरे निकट पहुँचते ही बोलीं, "आज आचार्यजी ने मुझे जीवन में एक बहुत बड़ा प्रसन्न होने का अवसर प्रदान किया है। शशि बहन से भेंट करके आपको भी हार्दिक प्रसन्नता होगी। वह बड़ी ही नम्र और मीठे स्वभाव की हैं। एक बार उनसे बातें करने लगो तो जी चाहे कि लगातार उनसे बातें ही करते रहो।"

शशि की प्रशंसा आचार्यजी के मुख से सुनकर मेरी भी उनमें श्रद्धा हो गई थी। मैं बोला, "उमादेवी ! मैं आचार्यजी को कोरा

भावुक व्यक्ति ही नही मानता हूँ। राजनीति के क्षेत्र में उनके दावँ-पेच में एक लम्बे काल से देखता चला आ रहा हूँ। इनकी प्रखर बुद्धि का लोहा मुझे जीवन में कई बार मानना पड़ा है। यह किसी व्यक्ति की परख करने में अकुशल नही हो सकते। बहुत सोच-समझकर यह किसी के विषय में अपना मत प्रकट करते हैं।

आचार्यजी ने आज तक और किया ही क्या है? जीवन में आने वाले व्यक्तियों के चरित्रों का अध्ययन ही तो किया है।

शशि के अन्दर अवश्य कुछ अलौकिक गुण होंगे, तभी तो वह आचार्यजी को प्रभावित कर सकीं और इनका सम्मान पा सकीं।

फिर जब तुम कह रही हो तो मेरे लिए सोचने-समझने की कोई बात ही नहीं रही। जो व्यक्ति तुम्हारी श्रद्धा और प्रेम का पात्र है उसके प्रति मेरा आकर्षण स्वाभाविक ही है।"

उमादेवी का स्वास्थ्य इधर कुछ दिनों से ठीक नही चल रहा था। उपचार बराबर जारी था, परन्तु फिर भी बीमारी पीछा नहीं छोड़ रही थी। ज्वर उनके बदन में कुछ ऐसा रम गया था कि छोड़ने का नाम ही नहीं लेता था।

उमादेवी का चित्त हर समय उदास-सा बना रहता था। आज कितने ही दिन पश्चात् चेहरे पर प्रसन्नता की आभा देखकर मुझे सुख मिला।

इसके उपरान्त मैंने ड्राइंग-रूम में बैठकर भोजन किया। उमादेवी भी मेरे बराबर की आराम-कुर्सी पर बैठ गईं। उन्होंने थोड़ा दूध और एक पीस डबल रोटी का लिया।

मैंने भोजन करना आरम्भ किया तो उमादेवी बोलीं, "सतीश के पिताजी! समय तो देखिये कितनी तीव्र गति से दौड़ता है। ऐसा साफ़ निकल जाता है कि कुछ पता नहीं चलता। चलता प्रतीत नहीं होता और चलता चला जाता है।

इस समय मुझे लग रहा है कि मानो यह कल की ही बात है कि मैं और शशि पास-पास एक टेबिल पर खाना खा रहे हैं। माताजी स्नेह-पूर्वक खाना परस रही हैं।

ठीक पचास वर्ष व्यतीत हो चुके उन बातों को, परन्तु आज लग रहा है कि जैसे अब घट रही हैं वे जीवन में। हमारे जीवन का वह प्रभात मानो आज मेरी आँखों के सम्मुख खिल रहा है।"

उमादेवी की बात सुनकर मैं बोला, "स्नेह और प्रेम के क्षण जीवन की शिला पर आप-से-आप खुदते चले जाते हैं। वे अमिट हो जाते हैं। उन पर आदमी की जब भी दृष्टि पड़ जाती है तो लगता है कि आज ही खुदे हैं।

मेरे और तुम्हारे विवाह को भी आज पैंतालीस वर्ष व्यतीत हो चुके, परन्तु लगता है कि जैसे आज ही हो रहा है। मैं तुम्हारे चेहरे की ओर देखता हूँ तो लगता है कि यह वही खिला हुआ गुलाब है जिसे छाती से लगाकर मेरी तृषित आत्मा को एक दिन महान् शान्ति मिली थी।

क्या तुम्हें बहुत दिन पुरानी बात लगती है यह ?"

उमादेवी मेरी बात सुनकर आनन्द-विभोर हो उठीं। उनके सूखे हड्डियों के ढाँचे में जैसे नये जीवन का संचार हो गया। मानो ओस के शीतल कणों के प्रभाव से पुष्प की मुरझाई हुई पंखुरियाँ फिर से खिल उठीं।

उमादेवी ने मुग्ध दृष्टि से मेरी ओर देखा। उसके सम्मुख जीवन का अतीत वर्तमान बनकर नृत्य कर रहा था। प्राचीन स्मृतियाँ रंगीन हो उठी थीं।

उमादेवी स्नेहार्द्र स्वर में बोलीं, "वे कभी पुरानी नहीं होंगी सतीश के पिताजी !"

उमादेवी के ये शब्द सुनकर मेरा बदन रोमांचित हो उठा। मुझे लगा कि मेरे वृद्ध बदन में एक बार फिर से युवावस्था का रक्त

संचारित हो रहा है। मैंने अपनी स्नेह-भरी दृष्टि उमादेवी के चेहरे पर फैला दी। मैंने देखा कि कई दिन से जो उनके चेहरे पर मुझे सूखा और रूखापन-सा दिखलाई दे रहा था, वह इस समय वर्तमान नहीं था। उमा के रोगग्रस्त मुख-मण्डल पर आभा उतर आई थी।

मैं बोला, "अतीत की बातें व्यक्ति कभी भूलता नहीं उमादेवी ! जो घटनाएँ जीवन की माला का एक पुष्प बन चुकी हैं, वे भुलाई कैसे जा सकती हैं ! वे माला के पुष्प तो हर समय हृदय से चिपके ही रहते हैं।

गत पैंतालीस वर्ष में तुमने और मैंने मिलकर जो माला गूँथी है उसका एक-एक पुष्प बहुत मूल्यवान है।"

उमादेवी अपलक नेत्रों से मेरी ओर देख रही थीं और जो कुछ मैं कह रहा था उसे बड़े ध्यान से सुन रही थीं।

वह बोलीं, "शशि को आपने देखा नहीं कभी। अपने बाल-काल में एक दृष्टि में दर्शक को मंत्र-मुग्ध कर देने वाली लड़की थी वह। उसके चेहरे पर नेत्र पड़कर सचमुच अपलक हो जाते थे। नेत्रों को बड़ा ही सुख मिलता था शशि के कमल जैसे खिले हुए नेत्रों पर दृष्टि डालकर।"

उमादेवी की बात सुनकर मेरे मुख से स्वाभाविक आश्चर्य के साथ निकला, "उमादेवी ! क्या शशि तुमसे भी अधिक सुन्दर थीं ? मेरी दृष्टि के सम्मुख तो आज तक तुम्हारे रूप से सुन्दर रूप कोई आया नहीं।"

उमादेवी कुछ लजाकर मुसकरा दीं मेरी बात पर। मैंने देखा कि उमादेवी का श्वास कुछ तीव्र गति के साथ चलने लगा था। उनके नेत्रों में एक मनोरम-सी आभा झलक रही थी।

वह बोलीं, "मेरा रूप केवल आपकी ही दृष्टि से अनुपमेय रहा है।

कभी-कभी जब मैं शशि के रूप की प्रशंसा करती थी तो वह लजा जाती थी। आप सच जानिये कि उस लज्जा के आवरण में ढककर उसका रूप और भी सलौना हो उठता था। उसके रूप पर और निखार आ जाता था।"

कहते-कहते उमादेवी रुक गईं। वह कुछ थक-सी गई थीं कुर्सी पर बैठे-बैठे।

मैं बोला, "तुम थक गई हो बैठी-बैठी। अब पलंग पर लेट जाओ। आज बहुत देर बैठी रहीं तुम। ऐसा न हो कि ज्वर बढ़ जाय।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "आज ज्वर नहीं बढ़ेगा।" और इतना कहकर वह कुर्सी से उठ खड़ी हुईं। वह पलंग की ओर न बढ़कर सीधी अपने चमड़े के सूटकेस की ओर बढ़ीं। उसे खोलकर उसकी जेब से एक लिफाफा निकाला और उसे लेकर वह फिर कुर्सी पर जा बैठीं।

उमादेवी ने धीरे-धीरे उस लिफाफे में से कुछ चित्र निकाले और फिर उनमें से एक को अपने हाथ में लेकर देखा। वह देखती रहीं कुछ देर और मुसकराती रहीं। फिर वह चित्र मेरे हाथ में देती हुई बोलीं, "यह देखिये, शशि का चित्र! आज से पचीस वर्ष पुराना चित्र है यह। कुछ धुँधला पड़ गया है, परन्तु फिर भी कितना सुन्दर है!"

मैंने चित्र अपने हाथ में लेकर देखा। चित्र सुन्दर था, इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु तभी मेरे सम्मुख उमादेवी का वह रूप आकर खड़ा हो गया। जब प्रथम बार मैंने उसके मुख-चन्द्र से घूँघट का रेशमी पर्त उतारकर उस अलौकिक छवि के दर्शन किए थे। उसके सम्मुख यह चित्र कुछ भी नहीं था।

उमादेवी ने पूछा, "कैसा लगा आपको शशि का चित्र? रूप की साक्षात प्रतिमा है न यह?"

उमादेवी के प्रश्न का मैं कोई उत्तर न दे सका तो वह मुसकराकर बोलीं, "आपके अन्दर मैं जानती हूँ कि अपनी वस्तु को ही सर्वसुन्दर समझने का इतना बड़ा मोह है कि उसके सम्मुख अन्य कोई वस्तु सुन्दर लग ही नहीं सकती।"

मैं सरल स्वभाव से बोला, "तुम इसे मेरा लोभ या कुछ भी कहो उमादेवी ! परन्तु जिस बात की हृदय गवाही न दे, उसे स्वीकार कैसे करूँ ? रूप का सम्बन्ध जितना आँखों से है उससे सहस्रों गुना अधिक हृदय से है। मेरे हृदय का रिक्त स्थान एक रूप ने पूरी तरह भर लिया है। अब उस पर अन्य किसी रूप का प्रभाव ही नहीं पड़ता। आँखें देखती हैं और संदेश लेकर हृदय के द्वार तक पहुँचती भी हैं, परन्तु वहाँ द्वार बन्द मिलता है उन्हें। वे बेचारी लौट आती हैं और वह रूप उनकी दृष्टि से ओझल हो जाता है। उसकी स्मृति तक नहीं रहती, क्योंकि स्मृति के पास तक उसका प्रवेश नहीं होता। हृदय से उसका सम्बन्ध नहीं जुड़ता।"

उमादेवी वह चित्र मेरे हाथ से लेकर पलंग पर लेट गईं। कुछ देर उसे देखती रहीं और फिर धीरे-धीरे बोलीं, "शशि बाँकीपुर नरेश की इकलौती कन्या थी। अपनी लड़की की सुशिक्षा के अभिप्राय से उसके पिताजी ने बाँकीपुर में महाविद्यालय की स्थापना की थी और सौभाग्य से इस विद्यालय के मुख्य अधिष्ठाता के रूप में उन्होंने पूज्य पिताजी को स्थान दिया था।

शशि के पिताजी और माताजी, पिताजी का बड़ा आदर करते थे। बाँकीपुर में जो हमारी कोठी है वह उन्होंने बनवाकर दी थी।

हम लोग आदिकाल से बाँकीपुर के रहने वाले हैं। हमारे पूर्वज प्रयाग में रहते थे। पिताजी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे और उनके पांडित्य की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी।

इसी बीच एक बार शशि के माता-पिता तीर्थ-यात्रा के लिए प्रयाग आये और एक दिन संध्या-सभा में पिताजी का भाषण सुना।

सभा विसर्जित हो गई। सब श्रोतागण चले गये, परन्तु फिर भी पिताजी ने देखा कि तीन व्यक्ति बैठे रह गये थे।

पिताजी स्वयं उठकर उनके पास पहुँचे और शशि के पिताजी को प्रणाम करके पूछा, "क्या आपको किसी शंका का समाधान करना है ? आप अपना प्रश्न सहर्ष पूछ सकते हैं।"

शशि के पिताजी विनम्र स्वर में बोले, "मुझे कोई प्रश्न नहीं करना और न किसी शंका का ही समाधान करना है। मुझे एक निवेदन करना है आपसे।"

"निवेदन ! पिताजी ने मुसकराकर कहा। तो कीजिये निवेदन ही। निवेदन में संकोच की क्या बात है ?" इतना कहकर पिताजी उनके निकट ही फर्श पर आलती-पालती लगाकर बैठ गये।

यह देखकर मैं भी अपने स्थान से उठकर पिताजी के निकट पहुँच गई।

शशि के पिताजी बोले, "मैं बाँकीपुर का रहने वाला हूँ। वहाँ आस-पास में कोई शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है। मैं वहाँ एक महाविद्यालय खोलना चाहता हूँ। यदि आप उस महाविद्यालय का अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लें तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो सकता है।"

पिताजी ने केवल एक बार शशि के पिताजी के चेहरे पर गम्भीर दृष्टि डाली और तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी।

यह सुनकर मैं आश्चर्य-चकित रह गई। माताजी ने कोई मत प्रकट नहीं किया। पिताजी का मत ही उनका मत था। चाचाजी ने इस बात का जमकर विरोध किया। बाबाजी को इस बात का पता चला तो वह भी इससे सहमत न हो सके।

परन्तु पिताजी बड़े ज़िद्दी आदमी थे। एक बार उनकी जबान से

हाँ निकल जाती थी तो वह पत्थर की लकीर बन जाती थी। उसमें परिवर्तन होना असम्भव हो जाता था। ब्रह्मा भी उसे ना नहीं कर सकता था। लेकिन उनकी ज़बान से किसी बात के लिए हाँ निकल जाना भी कोई सरल काम नहीं था। जितनी सुगमता से उन्होंने बाँकीपुर जाने के लिए अपनी अनुमति दे दी उतनी सुगमता से अन्य किसी बात के लिए अनुमति देते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। मैं स्वयं आश्चर्य-चकित रह गई उस हाँ को सुनकर।

पिताजी के मुख से उनकी स्वीकृति के शब्द सुनकर शशि के पिताजी की बाछें खिल गईं। उनके मुख पर रौनक आ गई। वह कृतज्ञता-पूर्ण स्वर में बोले, "मेरी प्रयाग-यात्रा आपने सफल कर दी आचार्यजी! विद्यालय की इमारत तैयार करवाकर ही मैंने प्रयाग के लिए प्रस्थान किया था।

आप यदि मेरे साथ ही बाँकीपुर चले चलें तो विद्यालय का कार्य प्रारम्भ होने में तनिक भी विलम्ब न हो।"

पिताजी अपनी अनुमति देते हुए बोले, "मुझे आपके साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं है। आप जब बाँकीपुर के लिए प्रस्थान करें तो मुझे अपने साथ लेते चलें।"

शशि, उसके पिताजी और माताजी प्रसन्न चित्त वहाँ से विदा हुए। दस दिन प्रयाग में ठहरे और नित्य ही पिताजी की कथा सुनने के लिए संध्या को आते रहे।

चलते समय पिताजी उनके साथ बाँकीपुर आये और फिर एक माह पश्चात् मैं और माताजी भी बाँकीपुर चले आये।

उसके पश्चात् हम लोग बाँकीपुर में ही रहने लगे। कुछ दिन तक प्रयाग से सम्पर्क बना रहा, परन्तु वह नाम-मात्र का ही रह गया था। प्रयाग का मकान पिताजी ने चाचाजी के नाम करा दिया। इसके पश्चात् हमारा प्रयाग से बिल्कुल ही सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

हमलोग बाँकीपुर के ही हो गये। शशि के पिताजी मुझे बहुत प्यार करते थे। शशि के समान ही वह मुझे मानते थे।"

कहते-कहते उमादेवी के नेत्र अश्रुओं से भर गये। मैं कुर्सी से उठकर उनके पलंग की पट्टी पर पास में ही जा बैठा और मस्तक पर हाथ फेरा तो वह स्वेद पूर्ण हो गया था।

मैंने धीरे से स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "उमादेवी ! अब अपने मस्तिष्क को पुरानी स्मृतियों से मुक्त कर लो, वरना तुम्हारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। तुम्हें ज्वर है और दुर्बलता अधिक बढ़ी हुई है। ऐसा न हो कि कहीं तुम्हें दौरा पड़ जाये।"

वह बोलीं, "आप चिन्ता न करें इसकी। मेरा मन अब पहले से बहुत ठीक है। मुझे अचानक शशि के पिताजी की याद आ गई। वह मुझे अपनी गोद में बिठलाकर बड़े प्यार से खिलाया करते थे। परमात्मा ने उनकी आयु अधिक नहीं लगाई। वह युवावस्था में ही स्वर्ग सिधार गये। यहाँ तक कि अपनी प्यारी बिटिया शशि की शादी भी नहीं कर सके। परन्तु शशि का रिश्ता राजा सुमेरसिंह से उन्होंने निश्चित कर दिया था।

शशि के पिताजी की मृत्यु का पिताजी पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ा। उनका विचार बाँकीपुर महाविद्यालय को एक दिन विश्वविद्यालय में परिणत करने का था, परन्तु उनका वह स्वप्न अधूरा ही रह गया।"

तभी कमरे का द्वार खुला और सतीश गुनगुनाता हुआ अन्दर चला आया।

उमा को लेटी देखकर वह गुनगुनाना बन्द करके हमारे निकट आ गया। उसने मुझसे धीरे से पूछा, "क्या माताजी की तबियत फिर कुछ खराब हो गई ?"

"नहीं बेटा ! मैं तो बिलकुल ठीक हूँ। तुम क्या आचार्यजी के पास चले गये थे ?" उमा ने पूछा।

"हाँ, माताजी !" सतीश ने उत्तर दिया।

"तो अब जाकर खाना खा लो। महाराजिन बेचारी तुम्हारी ही प्रतीक्षा में चूल्हा जलाये बैठी है।" उमादेवी ने कहा।

"अरे क्यों ? मैंने तो खाना खा लिया। आचार्यजी ने बिना खाना खिलाये मुझे आने ही नहीं दिया। आप लोगों के लिए भी उनका नौकर मिठाइयाँ ला रहा है।" सतीश ने कहा।

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "शशि की बिटिया की शादी की मिठाई होगी। लाने दीजिये उसे। मैं भी चखकर देखूँगी और सतीश तुम्हें भोजन नहीं करना है तो महाराजिन से कह दो कि वह रसोई उठा दे और खाना खा-पीकर सफाई कर दे।"

सतीश रसोईघर की ओर चला गया और तभी आचार्यजी का नौकर बद्रीपंडित एक डलिया हाथ में लटकाये हुए आ पहुँचा।

उमादेवी उठकर बैठ गईं।

बद्रीपंडित ने आकर पाँव लागन कहा और मिठाई की टोकरी पलंग के सामने रखी मेज पर रखकर बोला, "बहूजी, यू मिठाई भेजी है आचार्यजी ने।"

"रख दो पंडित !" उमादेवी बोलीं और फिर मुसकराकर बद्री-पंडित से पूछा, "कहो बद्रीपंडित ! शादी कैसी रही राजा साहब की बिटिया की ?"

बद्रीपंडित कमरे की चौखट के पास दरी पर बैठ गया और प्रसन्न मुद्रा में बोला, "बड़े लोगन की सादी के कौन ठाट बखान करै बहूजी ! खूब ठाट-बाट की सादी भई। पर सच पूछो तो या बिरियाँ ऊ ठाट-बाट नाँय रह्यौ जू बड़ी बिटियान की सादीन में रह्यौ। सरकार ने रियासत तौ छीन लई बिचारे राजा साब की। आमदनी कछु रही नाँय। ठाट-बाट तौ तुम जानत हो बहूजी सब पैसे के साथ-साथ चलत है। पर फिर भी आम लोगन से तो अच्छा ही रह्या सब-कुछ। साठ

हज्जार रुपैया नकदी दिया बिटिया कू और गहना-जेबर-सामान की तो कछु सुम्मार ही नाँय रही।

पर फिर भी बेटावालेन के मन कू नाँय भाया। बेटा वाला तो तब ताँई फूला-फूला ही फिरता रह्या जब ताईं पूरे साठ हज्जार गिन-वाय न लिये। लड़कन कौ मोल करन में इन बड़े लोगन कू ह्या नाँय आवै। इन लोगन सैं तौ हम गरीबन के ब्याह ही जादे हँसी-खुसी से होत हैं। भगवान् जिन्हैं जादा पैसा दै है उनन की हबस भी उतनी ही बढ़ाय देय है।"

बद्रीपंडित की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "तौ लेन-देन पर खूब तनातनी रही बद्रीपंडित! परन्तु लड़का कैसा था?"

"लड़का की मत पूछौ बहूजी! लड़का कू तौ ऐसा जानो जैसे हंसनी कू हंस मिल गया होय। मैंने तौ वाकू जब भी देखा तौ वाका चेहरा हँसता ही मिला। वाके पिता और मामा ने जब जादा लैन-दैन के लैयों चीं-पटाख चलाई तो वाने उनन कू ऐसी फटकार बताई, ऐसी फटकार बताई, अक तबियत दुरस्त है गई।"

बद्रीपंडित की इस बात के कहने के ढंग पर मुझे और उमादेवी को बहुत हँसी आई।

उमादेवी ने मिठाई की टोकरी अपने हाथ से खोली और फिर उसकी मिठाई एक थाल में करीने के साथ फैलाकर लगा दी। फिर सब प्रकार की मिठाइयों में से जरा-जरा-सी किरचें तोड़कर चखते हुए मेरे चेहरे पर देखकर बोलीं, "शशि की बिटिया की शादी की मिठाई खाने में आज उतना ही हर्ष हो रहा है जितना अपनी बेटी लता की शादी की मिठाई खाने में होता। लता जीती रहती तो अब तक उसका भी विवाह कर दिया होता हमलोगों ने।" कहते-कहते उमा का मन तनिक भारी-सा हो गया।

लता मुझे भी बहुत प्यारी थी। लता का नाम उमा के होंठों से निकलते ही लगा कि मानो किसी ने मुझे झँझोड़ दिया। मेरी आँखों के सम्मुख लता का स्मृति-चित्र आकर उपस्थित हो गया। मेरे नेत्र रुँआसे हो उठे। मैंने डबडबाये नेत्रों से उमा की ओर देखा। उमा मेरी ओर देख रही थी। दोनों की आँखों में आँसू थे। दोनों एक-दूसरे के हृदयों की गति को गिन रहे थे और दोनों ही दोनों के मनों में बहने वाली लता के प्रेम की धारा में डुबकियाँ लगा रहे थे।

उमा बोली, "लता बड़ी होनहार लड़की थी। भगवान् उसकी आयु लगाता तो सतीश और लता की जोड़ी बनी रहती। बहन का प्यार भी हमारी भारतीय सभ्यता में एक अलौकिक आनन्द की वस्तु है। जितना निःस्वार्थ प्रेम एक बहन अपने भाई को प्रदान करती है उतना एक पत्नी भी अपने पति को नहीं दे सकती।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं उमा!" मैंने कहा। और तभी मैंने सतीश को उधर आते देखा। मैं धीरे से बोला, "सतीश आ रहा है। उसके कानों में लता का नाम पड़ा तो उसका मन खिन्न हो उठेगा और फिर घण्टों तक लाख समझाने पर भी वह शान्त नहीं होगा।"

बद्रीपंडित मिठाई देकर लौट गये।

सतीश हमारे पास आकर कुर्सी पर बैठ गया। वह आचार्यजी से राजा सुमेरसिंह की पुत्री के विवाह की बातें सुनकर आया था।

बीच में गोल मेज पर मिठाई का थाल देखकर वह बोला, "बद्री-पंडित दे गये मिठाई?"

उमादेवी बोलीं, "कुछ और खा लो सतीश!"

सतीश मुसकराकर बोला, "आचार्यजी ने आज इतनी मिठाई खिलाई है माताजी, कि मन बिलकुल भर गया है मिठाई से। मैंने खूब जी-भरकर खाई थी वहाँ।"

सतीश फिर तनिक ठहरकर मेरी ओर देखता हुआ बोला,

"पिताजी ! मेरी बहन लता होती तो क्या अब तक हम उसका विवाह न करते ? वह भी तो अब तक विवाह के योग्य हो जाती ?"

सतीश की बात सुनकर मैं और उमादेवी अपने को न सँभाल सके। सतीश को आते देखकर हमने लता की बातें बन्द कर दी थीं। परन्तु अब सतीश के दुबारा इस वृत्तान्त को छेड़ देने से हम दोनों की आँखों में आँसू झलक आये।

हमें देखकर सतीश भारी मन से बोला, "लता बहन मुझे अकेला ही छोड़कर चली गई पिताजी ! वह बड़ी निर्दय निकली। उसे अपने भाई पर तनिक भी दया नहीं आई।" इतना कहकर उसके नेत्रों से आँसू ढुलक पड़े।

मैंने खड़ा होकर सतीश को अपनी छाती से लगा लिया। मैं अपने हृदय की पीड़ा को दबाकर बोला, "बेटा ! जीवन और मृत्यु पर व्यक्ति का अधिकार नहीं होता। यहाँ आकर व्यक्ति परवश हो जाता है। तुम्हारी बहन लता क्या तुम्हें छोड़ जाना चाहती थी ? वह कितना प्यार करती थी तुम्हें, परन्तु जब जीवन ही इतना लेकर आई थी, तो करती भी क्या ?"

उमादेवी बोलीं, "बेटा सतीश ! लता के लिए रोओ नहीं तुम। देश की सब लड़कियों को लता के ही रूप में देखो। तुम्हें अनेक लताएँ मिलेंगी। बहनों के प्रति भाई का कर्त्तव्य निभाने की भावना को हृदय में विकसित करो। लता ने मरकर यही सन्देश छोड़ा है तुम्हारे लिए।"

सतीश ने मुझ से दो पग पीछे हटकर अपनी माताजी के चेहरे पर डबडबाये नेत्रों से देखा और फिर सिर नीचा करके कहा, "मुझे आशीर्वाद दो माताजी ! मैं लता के सन्देश को वहन करने योग्य बन सकूँ।"

"तुम अवश्य बन सकोगे बेटा ! मेरा मन कह रहा है।" गम्भीरता-

पूर्वक उमा ने कहा और आगे बढ़कर उमादेवी ने सतीश को अपनी बाहुओं में भर लिया।

[५]

आचार्यजी संध्या को हमारे यहाँ पधारे।

मैं उनकी प्रतीक्षा में था। संध्या होते ही सतीश ने माली से कहकर बागीचे के लॉन में छिड़काव करा दिया था और उस पर चार-पाँच कुर्सियाँ डलवा दी थीं।

मैं और आचार्यजी दो कुर्सियों पर आमने-सामने बैठ गये। आचार्यजी ने कुर्सी पर ैठते ही मुझसे पूछा, "उमा की तबियत कैसी है अब ?"

मैं बोला, "कल से अच्छी है। आपने जो शशिप्रभा की सूचना उमादेवी को दी है, उससे उनकी प्रसन्नता में निश्चित रूप से अन्तर आया है।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी को बहुत सन्तोष हुआ। वह बोले, "उमा को चाहिए कि वह इस अवस्था में स्वास्थ्य का ध्यान रखे। लापरवाही में ही उसने अपना स्वास्थ्य खराब कर लिया है। यदि बीमारी प्रारम्भ होते ही दवा ले लेती तो तकलीफ इतनी न बढ़ती।"

"आपका यह अनुमान बिलकुल ठीक है। मैंने स्वयं उन्हें बहुत समझाया, परन्तु मेरी एक नहीं सुनी। जब स्वास्थ्य बिलकुल खराब कर लिया, तब औषधि पीनी स्वीकार की।" मैंने दुखी मन से कहा।

हमारी ये बातें चल ही रही थीं कि तभी उमादेवी वहाँ आ गईं और मुसकराकर बोलीं, "मेरे आते ही आप दोनों चुप हो गये। इसका अर्थ यही है कि आप दोनों मेरे ही विषय में बातें कर रहे थे।"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "इसमें कोई सन्देह नहीं उमा ! हम लोग इस समय तुम्हारे ही विषय में बातें कर रहे थे। तुम अपने स्वास्थ्य के विषय में बहुत लापरवाह हो, यही चर्चा हो रही थी। जो लापरवाही जवानी के दिनों में अधिक हानिकारक सिद्ध नहीं होती वह इन दिनों में कभी-कभी बहुत घातक बन जाती है। डाक्टर साहब से मैंने बातें की थीं तो वह कह रहे थे कि इस बार तुमने अपने स्वास्थ्य की यह दशा अपनी लापरवाही से कर ली है।

यह ठीक नहीं किया तुमने उमा !"

उमा मुसकराकर बोली, "तो आप दंड दे डालिये मुझे मेरी लापरवाही के लिए। आपका दंड स्वीकार करने के लिए मैं सर्वदा उद्यत हूँ।"

उमादेवी की बात ने मेरे और आचार्यजी के मनों में गुदगुदी पैदा कर दी। आचार्यजी हँसकर बोले, "तुम्हारी इस उद्दंडता ने इस बुढ़ापे में भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ा उमा ! भला सोचो कि क्या तुम आज भी दंड योग्य रह गई हो ? इतनी वृद्ध और फिर बीमार।"

उमा मुसकराकर बोलीं, "दंड के योग्य नहीं रह गई हूँ तो आप क्षमा कर दीजिये अपनी उमा को ! मैं तो जब तक जीऊँगी उद्दंडता करती ही रहूँगी और आप भी क्षमा करते ही रहेंगे, यह मैं जानती हूँ।"

उमादेवी और आचार्यजी की बातों में मैं रस ले रहा था। कितना मिठास था उनमें, मैं इसका मौन मन से अनुभव कर रहा था !

मुझे तभी पिछले दिन की बात का स्मरण हो आया। मैं आचार्यजी की ओर देखकर बोला, "आपने कल कहा था कि आप राजा सुमेरसिंह के विषय में कुछ बतलायेंगे।

कल की बातों ने हम लोगों के जीवन में एक नया अध्याय खोल दिया। कल संध्या को आपके चले जाने के पश्चात् मैं और उमादेवी राजा

सुमेरसिंह की पत्नी शशिप्रभा के विषय में बहुत देर तक बातें करते रहे। बहुत-सी ऐसी बातें, जिनकी हवा भी मुझे आज तक नहीं छू पाई थी। कल उनका रहस्योद्‌घाटन हुआ। नई-नई बातें मालूम हुईं।

कभी-कभी आदमी सोचता है कि वह न जाने कितनी बातें जानता है, परन्तु सच यह है कि वह बहुत-सी अपने निकट सम्पर्क की बातों से भी अपरिचित रहता है। उसे पता ही नहीं होता कि उसके निकट में क्या छिपा पड़ा है?

"इसमें कोई सन्देह नहीं यतीन्द्र बाबू। परन्तु ये रहस्य की बातें साधारण मस्तिष्क में सुरक्षित नहीं रह सकतीं। इस दृष्टि से उमा की मैं मुक्त कंठ से सराहना किये बिना नहीं रहूँगा। उमा और शशि की मित्रता के रहस्य को मैं और तुम कल तक नहीं जान सके, इसके लिए हमें उमा को दाद देनी होगी।" आचार्यजी बोले।

"आप व्यर्थ ही मेरी प्रशंसा करके मुझे फुला न डालिये आचार्यजी! अपनी मूर्खता को मैं छिपाये न रखती तो भला और क्या करती? शशि जैसी स्नेह प्रिय बड़ी बहन से मैंने व्यर्थ के लिए झूठे अभिमान की गरिमा में फँसकर अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, यह कहाँ की बुद्धिमत्ता थी?" उमादेवी बोलीं।

आचार्यजी हँस पड़े उमादेवी की बात सुनकर। वह फिर सरल स्वभाव से बोले, "तुम अपने ऊपर कभी आँच नहीं आने दोगी उमा, यह मैं भली प्रकार जानता हूँ। कोई तुम्हें किसी विषय में एक शब्द भी कह सके, ऐसा अवसर तुम कभी जीवन में आने ही न दोगी। तुम्हारी चतुर बुद्धि का मैं उसी दिन से प्रशंसक रहा हूँ जिस दिन मेरा तुम्हारा जीवन में प्रथम सम्पर्क हुआ था।"

आचार्यजी के यह शब्द सुनकर मुझे आज चालीस वर्ष पूर्व कहे गये उनके वाक्य स्मरण हो आये। आपने कहा था, "यतीन्द्र बाबू! आपके विचारों से मैं प्रभावित हुआ और इससे भी अधिक मुझ पर

आपकी धर्मपत्नी की बुद्धिमत्ता का प्रभाव पड़ा। परमात्मा ने आपको बहुत योग्य और शालीन पत्नी दी है।"

आचार्यजी उमादेवी के प्रारम्भ से ही प्रशंसकों में रहे हैं। उमा-देवी के साधारण-से-साधारण कामों में भी उन्होंने अलौकिक गुणों के दर्शन किये हैं।

मैं इन्हीं बातों में उलझा हुआ था कि आचार्यजी बोले, "यतीन्द्र बाबू ! तुम राजा सुमेरसिंह के विषय में जानना चाहते हो तो सँभलकर बैठ जाओ।" और फिर उमादेवी की ओर मुँह करके बोले, "उमा ! तुम भी अपने जीजाजी के जीवन से तनिक परिचित हो लो। सम्भवतः कभी परस्पर भेंट का अवसर मिले तो तुम कोरी सलेट लेकर तो उनके सम्मुख उपस्थित न हो। उनके जीवन की तुम्हें जानकारी होगी तो बातें करने में भी आनन्द आयेगा।"

मैंने और उमादेवी ने एक टक आचार्यजी के चेहरे पर देखा तो वह मुसकराकर बोले, "मालूम देता है कि अब तुम दोनों राजा सुमेरसिंह की कहानी सुनने को उद्यत हो। तो सुनो। कहानी बड़ी ही रोचक है। कहानी क्या है, अच्छा-खासा उपन्यास है।

राजा सुमेरसिंह, मैं और बहादुरसिंह—तीनों सहपाठी थे। तीनों ने एक ही वर्ष में आई० सी० एस० की परीक्षा पास की।

राजा सुमेरसिंह और बहादुरसिंह दोनों एक जाति के थे। दोनों का परस्पर मेल-जोल था, परन्तु मैं जानता था कि यह मेल-जोल दिखावटी है।

राजा सुमेरसिंह ने मुझसे कभी बहादुरसिंह की कोई बुराई नहीं की, परन्तु बहादुरसिंह जब कभी भी मुझसे मिला, सर्वदा सुमेरसिंह की बुराई ही करता रहा।

राजा सुमेरसिंह और बहादुरसिंह की आर्थिक दशा में भी आकाश-पाताल का अन्तर था। यों कहने के लिए बहादुरसिंह के पिताजी को

भी अंग्रेजी सरकार ने राजा साहब का खिताब दिया हुआ था परन्तु उनकी रियासत नाम-मात्र ही की रियासत थी। सुमेरसिंह के पिताजी का राज्य बहादुरसिंह के पिताजी के राज्य से लगभग बीस-पच्चीस गुना बड़ा था। यों सुमेरसिंह के मन में अपनी बड़ी रियासत की बू नहीं थी, परन्तु बहादुरसिंह के मन में अपनी छोटी स्थिति का ज्ञान करके सर्वदा जलन होती थी।

इन दोनों की स्थिति का अध्ययन मैंने बहुत निकट से किया था। मैं सुमेरसिंह की सरल प्रवृत्ति और बहादुरसिंह की कुटिलता, दोनों को परखता था परन्तु बातें दोनों से ही बहुत मित्रतापूर्ण करता था। इसीलिए ये दोनों मुझे अपना घनिष्ठ मित्र समझते थे और इनके मनों का कोई भी ऐसा रहस्य नहीं होता था जिसे ये मुझ पर न खोल देते हों।

बहादुरसिंह ऐयाश व्यक्ति था। खूब शराब पीता था और इधर उधर के अनेक कुमार्गों पर भी चलता था। कुमार्गों पर चलने के लिए वह सुमेरसिंह को भी घसीटने का प्रयत्न करता था और कभी-कभी सुमेरसिंह उसके साथ चला भी जाता था, परन्तु वह जाता केवल यह देखने के लिए ही था कि बहादुरसिंह जाता कहाँ-कहाँ है और उसका जीवन किस दिशा में बह रहा है।

सुमेरसिंह मुझ से लौटकर कहता था, "नरेन्द्र! बहादुर कुमार्ग पर चल रहा है। यह यहाँ विदेश में आकर अपने देश की बदनामी कर रहा है। मैं चाहता हूँ कि इसे किसी प्रकार ऐसे मार्ग पर चलने से रोका जाये।"

बहादुरसिंह मुझसे मिलता था तो कहता था, "नरेन्द्र बाबू! आज मैं और सुमेरसिंह रेस खेलने गये थे और उसके पश्चात् सैर-सपाटे के लिए। एक तुम ही ऐसे नीरस व्यक्ति हो जिस पर मेरा प्रभाव नहीं पड़ता।"

मैं मुसकराकर कह देता था, "भैया बहादुर ! तुम दोनों ही बड़े-बड़े घरानों के लड़के हो। तुम्हारे पिता तुम्हें पढ़ने और ऐयाशी करने, दोनों कामों के लिए रुपया भेज सकते हैं। मेरे पिताजी मेरे पढ़ने का व्यय सँभाल रहे हैं, यही बहुत-कुछ है।"

मेरी बात सुनकर बहादुरसिंह हँसकर शराब के खुमार में कहता था, 'यार रहने दो बस इन बातों को। हमारे सामने बनने का प्रयत्न न किया करो। तुम जैसे सूफ़ी हो, हम सब जानते हैं। परन्तु सच यह है कि हम तुम्हारी तरह छिपे रुस्तम नहीं हैं। जो कुछ भी करते हैं, तुमसे आकर साफ़ बतला देते हैं। हमारा हृदय मोती की तरह स्वच्छ है।"

मैं चुप हो जाता था बहादुर की बातें सुनकर। उसे उसकी बात का कोई उत्तर देना मैं अपनी नादानी समझता था।

बहादुर फिर मस्ती में झूमकर मेरी कमर पर हाथ मारता हुआ कहता था, "सुमेरसिंह का सूफ़ीपना तो मैंने आज समाप्त कर दिया। एक दिन तुम्हारा भी समाप्त न कर दूँ तब कहना।"

मैं बहादुर के इस चेलेंज को भी शर्बत के घूँट की भाँति पी जाता और मुसकराकर केवल इतना ही कह देता, "भैया बहादुर ! तुम नाम से ही बहादुर हो। तुम्हारे चेलेंज के सम्मुख सीना तानकर भिड़ने की सामर्थ्य मुझमें कहाँ है ? मैं तो अपनी कमजोरी को देखकर हार मानने को तैयार हूँ। आखिर मैं इतना रुपया कहाँ से लाऊँ कि यहाँ विदेश में ऐयाशी भी कर सकूँ और अपना खर्चा भी चलाऊँ ?"

मेरी यह बात सुनकर बहादुर गम्भीर हो जाता और अपनी कुर्सी मेरे निकट सरकाकर मेरे कान में कहता, "तुम कितने मूर्ख हो नरेन्द्र ! तुम वह मूर्ख हो कि जिसके हाथों में सोने की चिड़िया आ जाये और वह फिर भी अपने को निर्धन ही समझता रहे।"

मैं सब-कुछ समझकर भी भोला बना रहता और उससे सरलतापूर्वक पूछता, "तुम्हारा मतलब मैं समझ नहीं सका बहादुर !"

"तुम समझ ही नहीं सकते। बुद्धू कहीं के। रास्ता मैं दिखलाता हूँ और चलना तुम सीखो। रुपये की सुमेरसिंह के पास कमी नहीं है। वह आज चाहे तो लाखों रुपया उसके एक तार पर आ सकता है। तुम एक बार हाँ कहो तो मैं ऐसा प्रोग्राम निश्चित करूँ कि सुमेरसिंह रुपये के लिए अपने घर तार दे।"

बहादुरसिंह की बात सुनकर मैं मन-ही-मन उसकी नीच मनोवृत्ति पर विचार करता रहा और फिर हँसकर बोला, "कैसी बावली बातें कर रहे हो बहादुर ! सुमेरसिंह बड़ा चतुर व्यक्ति है। उसे तुमने जितना बुद्धू समझ रखा है, वह वैसा नहीं है। यह सच है कि उसके एक तार पर लाखों रुपये आ सकते है, परन्तु वह ऐसा तार कभी नहीं करेगा।"

मेरी इस बात को सुनकर बहादुरसिंह के आत्म-सम्मान को ठेस लगी। वह तिलमिलाकर बोला, "क्या बात करते हो यार नरेन्द्र तुम भी ? तुम कहते हो कि सुमेरसिंह बुद्धू नही है, वह बड़ा चतुर है, लेकिन मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि वह कोरा काठ का उल्लू है। उसमें घर की अक्ल कौड़ी बराबर भी नहीं है। मैं देखता हूँ कि वह रुपया कैसे नहीं माँगता है ? तुम देखते रहो कि होता क्या है।

आज पहला दिन था। कल दूसरा दिन होगा। परसों तीसरा दिन होगा और बस फिर चक्कर चल जाएगा। पहिया घूमने लगेगा। एक तार क्या नरेन्द्र बाबू ! तार-पर-तार भेजे जायेंगे। रुपये-पर-रुपया आयेगा।"

मैं मुसकराकर बोला, "तुम बहादुर हो भैया ! जो कुछ कर गुजरो वही कम है। तुम दोनों खेल खेलो। मुझे केवल दर्शक-भर रहने दो। इससे आगे बढ़ने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है।"

इस प्रकार जब तक भी हमलोग विलायत में रहे बहादुरसिंह बराबर सुमेरसिंह को अपने जाल में फँसाने का प्रयास करता रहा। परन्तु उसे अपने लक्ष्य में कभी सफलता नहीं मिली।

हम तीनों साथ-साथ विलायत से भारत लौटे। एक ही जहाज से हम तीनों बम्बई के बन्दरगाह पर उतरे।

भारत आकर हम तीनों के मार्ग पृथक-पृथक हो गये। हमारा कई वर्षों का साथ छूट गया।

सुमेरसिंह अपनी रियासत सहसपुर में चले गये। वह अपने पिता की लम्बी-चौड़ी रियासत के मात्र उत्तराधिकारी थे।

बहादुरसिंह पहले अपने घर गया और एक वर्ष के अन्दर-ही-अन्दर उसे सरकारी पद मिल गया। नौकरी उसे करनी ही पड़ी, क्योंकि उसकी रियासत कोई विशेष बड़ी नहीं थी और फिर उसके पिता के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के रूप में बहादुरसिंह के बड़े भाई सरनामसिंह मौजूद थे। वहाँ रहकर उसकी दाल गलने वाली नहीं थी। उसकी रियासत नाम-मात्र की रियासत थी, जिसमें गिनती के सात गाँव थे। और वे गाँव भी गंगा नदी के खादर के गाँव थे जिनसे आर्थिक आय बहुत कम थी। यह रियासत बाँकीपुर से लगभग तीस मील की दूरी पर लहरपुर नाम से प्रसिद्ध थी।

मैंने यहाँ आकर क्या किया यह आपको बतलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उससे आप दोनों ही भली-भाँति परिचित हैं।

जब हम तीनों बम्बई में एक-दूसरे से विदा हुए तो मैंने बहादुरसिंह को एक ओर ले जाकर चुपके से पूछा, "क्यों भाई बहादुर! अब सच-सच बतलाओ कि 'काठ का उल्लू' कौन रहा, तुम या सुमेरसिंह?"

मेरी यह बात सुनकर बहादुरसिंह झेंप गया, परन्तु मैंने देखा कि क्रोध के कारण उसकी आँखें लाल हो गयी थीं। वह मेरी ओर देखकर बोला, "नरेन्द्र बाबू! इस समय तो सच यही है कि इसने मुझे ही

उल्लू बना दिया, परन्तु जो धोखा इसने मुझे दिया है उसे मैं भूलने वाला नहीं हूँ। अपनी इस हार का जीवन में सुमेरसिंह से एक बार बदला अवश्य लूँगा और जिस दिन लूँगा उस दिन तुम्हें बतला दूँगा कि वास्तव में 'काठ का उल्लू' कौन है।"

मैं हँसकर बोला, "फिर-की-फिर देखा जायेगी बहादुर ! इस समय तुमने सही बात का स्वीकार कर लिया, इससे मुझे हर्ष हुआ।

अब तुम यह भी समझ लो कि सुमेरसिंह को समझने में तुमने भूल की है। वह तुम्हारा हर प्रकार से शुभचिन्तक रहा है और मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी कभी वह तुम्हारे अहित की कभी कोई बात नहीं सोच सकता।

तुम्हारे मन में तुम्हारी भूल से उसके प्रति जो दुर्भावना पैदा हो गई है उसे निकाल दो। इसीमें तुम्हारा हित होगा। वह तुम्हें अपने छोटे भाई के समान स्नेह करता है।"

मेरी बात सुनकर बहादुरसिंह ने एक हारे हुए खिलाड़ी के समान निराश दृष्टि से मेरी ओर देखा। शब्द एक भी नहीं कहा उसने अपने मुख से, परन्तु उसकी दृष्टि स्पष्ट कह रही थी कि वह सुमेरसिंह से बदला लेने से बाज. नहीं आयेगा और जीवन में आने वाले कभी ऐसे अवसर पर नहीं चूकेगा जब वह सुमेरसिंह को नीचा दिखा सके।

बस आज यहीं तक। इससे आगे की कथा और भी रोचक है। मुझे कुछ आवश्यक कार्य है। कुछ लोग मेरे यहाँ पधार रहे हैं। सम्भवतः आ चुके होंगे वे लोग।" जेब से घड़ी निकालकर देखते हुए आचार्यजी ने कहा।

आचार्यजी और अधिक न ठहर सके। मैंने और उमादेवी ने उन्हें बागीचे के द्वार तक आगे बढ़कर विदा किया।

चलते समय वह उमादेवी की ओर देखकर बोले, "उमा ! स्वास्थ्य का ध्यान रखना। इस अवस्था में खोया हुआ स्वास्थ्य सँभालना कठिन

हो जाता है। मुझे आशा है कि तुम इस दिशा में लापरवाही नहीं बरतोगी।"

उमा ने आचार्यजी को अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने का आश्वासन दिया, जिसे सुनकर मुझे भी हार्दिक सन्तोष हुआ।

[६]

उमादेवी काफी देर से यहाँ बैठी-बैठी थक गई थीं। मैं बोला, "चलो अब अन्दर चलें। तुम्हारा अधिक समय इस प्रकार खुली हवा में बैठना ठीक नहीं है। अब पलंग पर लेटना।"

"मैं स्वयं भी यही कहने वाली थी आपसे।" उमादेवी ने कहा और धीरे से मेरे कंधे का सहारा ले लिया। मैं धीरे-धीरे उन्हें घर के अन्दर ले गया और आराम से पलंग पर लिटा दिया।

उमादेवी इस समय कुछ थक अवश्य गई थीं, परन्तु उनके चेहरे पर प्रसन्नता के आसार स्पष्ट झलक रहे थे। वह खुश थीं।

लगभग एक घंटे पश्चात् डाक्टर साहब आ गये। उन्होंने अपने बेग में थर्मामीटर निकालकर उसके पारे को देखा और फिर उसे दो-तीन बार झटककर उमादेवी के हाथ में दे दिया।

उमादेवी ने थर्मामीटर को अपने मुँह में जीभ के नीचे लगा लिया और थोड़ी देर पश्चात् निकालकर डाक्टर साहब के हाथ में दे दिया।

डाक्टर साहब ने थर्मामीटर में निशानों पर चढ़े पारे को देखा और देखते ही उनका चेहरा खिल उठा। उनकी जबान से निकला, "गुड लक मिस्टर यतीन्द्र। टैम्परेचर नार्मल हो गया। यह इनाम का कार्य

किया है हमने इस बार। गत सप्ताह सिविल सर्जन साहब निराश हो गये थे टैम्परेचर का चार्ट देखकर।"

उमादेवी का टैम्परेचर नार्मल हो गया, इससे अधिक प्रसन्नता की बात मेरे लिए दूसरी नहीं हो सकती थी। मैंने उत्सुकतापूर्वक खड़े होकर थर्मामीटर उनके हाथ से अपने हाथ में ले लिया और देखकर उमादेवी से बोला, "सच उमादेवी ! अब तुम बिलकुल स्वस्थ हो, इतनी लम्बी बीमारी से आज तुम्हें मुक्ति मिली है। इससे अधिक प्रसन्नता की मेरे लिए अन्य कोई बात नहीं हो सकती।

आचार्यजी के पास यह सूचना लेकर मैं अभी सतीश को भेजता हूँ। उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी। तुम्हारे स्वास्थ्य की उन्हें बहुत चिन्ता रहती है।"

यह सुनकर उमादेवी के चेहरे पर भी मुसकराहट दौड़ गई। वह धीरे से बोलीं, "आपने इतनी सब बातें तो कह डालीं परन्तु डाक्टर साहब की बात का कुछ उत्तर नहीं दिया।"

और फिर धीरे से डाक्टर साहब की ओर मुँह करके बोलीं, "आपने सचमुच पुरस्कार का कार्य किया है, डाक्टर साहब ! वह आपको अवश्य मिलेगा।"

उमादेवी की बात सुनकर डाक्टर साहब कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोले, "आप स्वस्थ हो गईं उमादेवी ! इनसे बड़ा पुरस्कार मेरे लिए और नहीं हो सकता। आपने मुझे अपनी सेवा का अवसर प्रदान किया, मेरे लिए यही सबसे बड़ा पुरस्कार है।"

तभी सतीश आ गया। वह फुटबाल का मैच खेलने गया हुआ था।

जब उसे पता चला कि उसकी माताजी का टैम्परेचर नार्मल हो गया तो वह प्रसन्नता से उछल पड़ा और सीधा जाकर उमादेवी से लिपट गया।

मैं बोला, "सतीश ! तुम यह सूचना अभी जाकर आचार्यजी को

दे आओ और जल्दी लौटना। तुम लौट आओगे, हमलोग तभी खाना खायेंगे।"

सतीश और डाक्टर साहब के चले जाने पर मैंने उमादेवी के पास पलंग पर बैठकर अपना हाथ उनके मस्तक पर फेरा और फिर धीरे से कहा, "परमात्मा के लिए अब स्वास्थ्य के बारे में इतनी लापरवाही न करना।"

उमादेवी ने अपने मुसकराते हुए नेत्र मेरे चेहरे पर बिछाकर अपनी हथेली अपने मस्तक पर रखे मेरे हाथ पर रख दी। उमादेवी के गर्म-गर्म हाथ को मैंने फिर धीरे से अपने हाथ में ले लिया।

उमादेवी धीरे से बोलीं, "मैंने सचमुच इस बार की बीमारी में बड़ी लापरवाही बरती। मेरी भूल के कारण आपको बहुत कष्ट सहन करना पड़ा। मेरी तीमारदारी में आपने रात-दिन एक कर दिया। कष्ट बहुत हुआ, परन्तु बचा ही लिया आपने अपनी उमा को।

मुझे इस दीर्घकालीन ज्वर से मुक्त होने की तनिक भी आशा नहीं रही थी।"

मैंने प्यार से उमादेवी का हाथ चूमकर कहा, "तुम्हारी तीमारदारी में मुझे कष्ट हुआ, यह क्या कहने लगीं तुम उमादेवी? कष्ट दूसरों को हुआ करता है। अपनों को क्या कष्ट?

तुम्हारी इस बार की बीमारी में मुझसे अधिक दौड़-भाग सतीश ने की है। मैं तो हर समय तुम्हारे पास ही बना रहा हूँ।"

थोड़ी देर पश्चात् सतीश आ पहुँचा।

मैंने पूछा, "सूचना दे आये बेटा आचार्यजी को?"

"दे आया पिताजी!" सतीश बोला।

"सुनकर बहुत प्रसन्न हुए होंगे?" मैंने कहा।

"मारे खुशी के उछल पड़े एक दम। मुझे प्यार से अपनी गोद में उठाकर बोले, "अपनी अम्मा से अब लापरवाही न करने को कह देना।

ठंडे पानी में हाथ-पैर न डालने देना। अधिक परिश्रम का कोई काम न करने देना। खाने-पीने में भी ध्यान से काम लेना। जो डाक्टर बतलाये वही भोजन देना।"

"उत्तर में तुमने क्या कहा ?" मैंने पूछा।

मैंने कहा, "सब चीजों का ध्यान रखते हैं पिताजी, परन्तु फिर भी भूलें हो ही जाती हैं। इस बार मैं भी ध्यान रखूँगा। इस बीमारी में माताजी ने भी बहुत कष्ट उठाया है। इसलिए ध्यान वह भी कम नहीं रखेंगी। आप निश्चिन्त रहें, इस बार कोई लापरवाही आपको देखने को नहीं मिलेगी।"

मेरे इस आश्वासन से आचार्यजी को बहुत प्रसन्नता हुई।

मैं विदा होने लगा तो वह बोले, "मैं कल प्रातःकाल आऊँगा, उमा को देखने के लिए और हाँ चाय भी पीऊँगा।"

"तो कल प्रातःकाल की चाय का निमन्त्रण दे आये आचार्यजी को। महाराजिन से कह देना कि वह सवेरे शीघ्रता करे; क्योंकि आचार्यजी सवेरे-ही-सवेरे आ पहुँचेंगे।"

"उनका सवेरे चार बजे उठने का नियम कभी भंग नहीं होता।" मैंने कहा।

"इसमें कोई सन्देह नहीं सतीश के पिताजी ! जीवन के दैनिक कार्यक्रम की जैसी नियामकता मैंने आचार्यजी में देखी है, वैसी अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। तभी तो इस आयु में भी जवानों को पीछे छोड़ देते हैं।" उमादेवी बोलीं।

फिर मैंने और सतीश ने मिलकर भोजन किया। उमादेवी ने भी एक प्याली चाय और एक टोस्ट लिया। डाक्टर की इससे अधिक कुछ लेने की अनुमति नहीं थी।

आज का दिन बहुत दिन पश्चात् हमारे परिवार में इतने आमोद-

प्रमोद का आया था। उमादेवी को जब से डाक्टरों ने क्षय-रोग घोषित किया था, मेरा मन किसी चीज़ में नहीं लग रहा था।

सोते-जागते मेरा मन उमादेवी में ही पड़ा रहता था। क्षय-रोग मुझे काल के समान उमादेवी के चारों ओर मँडराता हुआ प्रतीत होता था। कभी-कभी मैं उससे बड़ा भयभीत हो उठता था।

परन्तु उमादेवी ने कभी धैर्य को हाथों से नहीं जाने दिया। चाहे बदन में रक्त नाम-मात्र को ही रह गया था और सारा बदन पीला पड़ गया था, परन्तु बातों में वही करारापन था, वही लोच और वही मिठास थी और होंठों पर वही मुसकराहट थी।

मैंने स्नेह से उमादेवी के चेहरे पर देखकर कहा, "उमादेवी, मैं गिरते-गिरते रुक गया। मुझे लग रहा था कि मैं किसी तूफ़ान में उड़ा जा रहा हूँ और वह तूफ़ान जाने किस पर्वत की चट्टान पर ले जाकर मुझे पटक देगा।

परन्तु अब देख रहा हूँ कि वह तूफ़ान धीरे-धीरे मन्द पवन में बदल गया। मैं खड़ा हूँ अब ज़मीन पर और प्यारी-प्यारी हवा मेरे दोनों ओर को बह रही है। अब वह मुझे उड़ा नहीं सकती। अब वह मुझे किसी चट्टान से नहीं टकरा सकती।"

उमादेवी मेरे हाथ पर अपना दुर्बल हाथ फेरती हुई बोलीं, "आपके ऊपर आनेवाली आपत्ति से मैं पूर्ण परिचित थी सतीश के पिताजी! यह भयानक ज्वर मेरी हड्डियों में रम गया था। बहुत बुरा ज्वर था। डाक्टर साहब ने मुझे क्षय घोषित कर दिया था, परन्तु मुझे अपने जीवन में बहुत बड़ा विश्वास था।"

"तुम्हारे इस विश्वास ने ही तुम्हें बल दिया उमादेवी! वरना यदि विश्वास न होता तो क्षय का नाम ही तुम्हारे बदन को घुला डालता" मैं बोला।

मेरी बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "अब बात चाहे

जो भी रही हो, परन्तु मेरा मन तो कहता है कि आचार्यजी ने मुझे शशि की प्रसन्नता का जो समाचार दिया, उसने मुझे असीम आनन्द की अनुभूति प्रदान की।

मेरा तो हृदय कुछ ऐसा कह रहा है कि मेरे ज्वर के ताप को मेरी बहन शशि के स्नेह ने शीतल कर दिया।"

मैं उमादेवी के चेहरे पर देखता रहा, बोला कुछ नहीं। फिर धीरे से कहा, "अब सोने का प्रयास करो उमादेवी! रात काफी हो गई।"

उमादेवी इसके पश्चात् एक घंटे में सो गई।

[७]

उमादेवी की अस्वस्थता ने इधर पिछले दिनों में आचार्यजी के कार्य को काफी धक्का पहुँचाया।

उमादेवी एक लम्बे काल से आचार्यजी के साथ राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय भाग लेती आ रही थीं। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में वह छः बार जेल-यात्रा कर चुकी थीं।

इधर जब से आचार्यजी ने राजनीति के क्षेत्र से अपना सम्बन्ध विच्छेद किया था तभी उमादेवी ने प्रदेश कांग्रेस अध्यक्षा के पद को त्याग दिया था। इसी प्रकार आचार्यजी के अन्य साथियों ने भी राजनीति को छोड़कर अपने को नये कार्यक्रम के लिए मुक्त कर लिया था।

दूसरे दिन आचार्यजी के यहाँ उनके साथियों की एक सभा आयोजित थी, जिसमें हर प्रदेश के प्रतिनिधियों ने आकर भाग लेना था।

उमादेवी की बीमारी ऐसे समय में आचार्यजी को बहुत ही खल रही थी। उनकी इच्छा थी कि उमादेवी यदि उनके नवीन कार्यक्रम में सक्रिय भाग न ले सकें तो कम-से-कम विचार-विमर्श के समय उपस्थित रहकर अपना मत अवश्य प्रकट कर सकें।

सच बात यह थी कि आचार्यजी उमादेवी की बुद्धिमत्ता के कायल थे। उनके मस्तिष्क से वे क्षण विस्मृत नहीं हुए थे जब उमादेवी के तनिक से संकेत ने उन्हें गम्भीर-से-गम्भीर गलत कदम उठाते-उठाते रोक दिया था।

आचार्यजी को उमादेवी की बुद्धिमत्ता पर गर्व था। उमादेवी आचार्यजी की दृष्टि में एक आदर्श स्त्री थीं। वह हृदय से सम्मान करते थे उमा का।

उमादेवी आचार्यजी को दिशा-दृष्टा मानती थीं। राजनीति के क्षेत्र में उन्हें ले जाने का श्रेय आचार्यजी को ही था। यदि आचार्यजी उमादेवी को उत्साह न बँधाते तो उमादेवी का जीवन एक कालेज के प्रिंसिपल की धर्मपत्नी रहकर ही समाप्त हो जाता। बँगले की चारदीवारी से बाहर किसी ने उमादेवी को न देखा होता और उनका नाम न सुना होता।

आचार्यजी की इस महान् अनुकम्पा के लिए वह उनकी हृदय से आभारी थीं। उनके हृदय में आचार्यजी के लिए वही सम्मान था जो एक शिष्य के हृदय में अपने गुरू के लिए होता है। उनके हृदय में आचार्य के प्रति महान् श्रद्धा थी।

उमादेवी को ज्वर उतर जाने के समाचार ने आचार्यजी को बहुत बड़ा सन्तोष प्रदान किया। उन्हें विश्वास हो गया कि अब यदि उमादेवी कल की सभा में भी भाग नहीं ले सकेंगी तो कम-से-कम विचार-गोष्ठी में बैठकर अपने विचार तो प्रकट कर ही सकेंगी।

यह विचार मन में आते ही आचार्यजी ने दूसरे दिन संध्या को

विचार-गोष्ठी का स्थान उमादेवी की कोठी पर ही निश्चित कर दिया।

तभी दूसरे दिन की सभा में भाग लेने के लिए आये हुए प्रतिनिधियों का दल आचार्यजी के मकान पर आ पहुँचा।

आचार्यजी ने खड़े होकर सबका स्वागत किया और उनमें जो बिहार के वयोवृद्ध कार्यकर्त्ता थे उनसे आचार्यजी कौली भरकर बड़े स्नेह के साथ मिले।

ये सब लोग इस समय महात्मा गांधी की समाधि पर फूल चढ़ाकर आ रहे थे। सबके चेहरे प्रसन्न थे और चेहरों पर तेज झलक रहा था।

सबको आराम से बिठलाकर आचार्यजी अपने नौकर बद्रीपंडित से बोले, "बद्रीपंडित ! बैठे कैसे हो ? अतिथियों को जलपान कराओ।"

बद्रीपण्डित को जलपान का आदेश देकर आचार्यजी अपने आसन पर विराजमान हो गये। आसन क्या था, लकड़ी के तख्त पर मूँज का बना आसन था। आचार्यजी आजकल इसी पर आमतौर से बैठते थे। सोते समय तख्त से आसन उतारकर बद्रीपण्डित एक दरी और उस पर सफेद चादर बिछा देते थे।

आचार्यजी बैठकर बोले, "आप देख आये गांधी बापू की समाधि !"

सबने अपनी-अपनी गर्दनों को हिलाकर कहा, "देख आये।"

इसी समय आचार्यजी का ध्यान अचानक उमादेवी की ओर गया और वह अपने सब साथियों को सूचित करते हुए सहर्ष बोले, "आपको यह समाचार पाकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि श्रीमती उमा भी कल हमारी विचार-गोष्ठी में भाग ले सकेंगी।

उमादेवी का स्वास्थ्य गत तीन-चार माह से बहुत खराब चल रहा था। डाक्टर ने उन्हें क्षय-रोग घोषित कर दिया था। परन्तु आज अभी

जो समाचार मिला है उसने डाक्टरों के मत का खण्डन कर दिया। आज उनका टैम्परेचर नार्मल हो गया है और अब आशा है कि वह बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जाएँगी।

उन्हें अधिक कष्ट न हो, इसलिए मैंने कल की 'विचार-गोष्ठी' का स्थान उन्हीं की कोठी पर निश्चित कर दिया है।

आचार्यजी की इस सूचना ने सभी महानुभावों को प्रसन्नता प्रदान की और सबने एक स्वर में कहा, "यह आपने बहुत ठीक किया आचार्यजी ! हम लोगों को अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करते समय श्रीमती उमादेवी के विचारों से भी लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इससे हर्ष की बात और क्या हो सकती है।"

तभी बद्रीपण्डित अतिथियों के लिए कुछ मिष्टान्न, नमकीन और शर्बत के गिलास ले आये।

सबने आनन्दपूर्वक जलपान किया।

आचार्यजी बोले, "आप सबके बीच बैठकर आज ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो मेरा पुरातन परिवार स्वर्ग से भूमि पर उतर आया है।" और इतना कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़े।

इस प्रकार हँसने की आचार्यजी की पुरानी बात से उनके सभी साथी परिचित थे और यह भी जानते थे कि इस प्रकार की हँसी उन्हें जीवन में तभी आती थी, जब वह अत्यधिक प्रसन्न होते थे।

उमादेवी का उनके जीवन से एक लम्बा और निकटतम सम्बन्ध रहा था। उनका स्वास्थ्य फिर लौट आया, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात उनके लिए और क्या हो सकती थी।

आचार्यजी की प्रसन्नता के रहस्य को समझकर बिहार के वयो-वृद्ध कार्यकर्ता और वहाँ की जनता के माने हुए नेता मुसकराकर बोले, "उमादेवी की अस्वस्थता इन दिनों मुझे भी बहुत खल रही थी आचार्यजी ! मैं यह सोच रहा था कि क्या हमारी गाड़ी भविष्य में

एक ही पहिये पर चलेगी ? परन्तु परमात्मा ने श्रीमती उमादेवी को स्वास्थ्य प्रदान करके हमारी गाड़ी के दूसरे पहिये को टूटने से बचा लिया।

अब मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम जो नया कार्यक्रम बनायेंगे उसे सक्रिय बनाने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।"

"निश्चित रूप से नहीं होगी सिन्हा साहब !" आचार्यजी दृढ़ विश्वास के साथ बोले।

बिहार के वयोवृद्ध नेता का नाम श्री शिवनारायण सिन्हा था जिन्हें उनके सभी साथी केवल सिन्हा साहब के ही नाम से पुकारते थे।

आचार्यजी गम्भीरतापूर्वक बोले, "मिस्टर सिन्हा ! उमादेवी में कार्य-कुशलता और संलग्नता के साथ कर्मठता का जो सामंजस्य मैंने इस जीवन में देखा है उसका बहुत-से अवसरों पर मुझे अपने जीवन में भी अभाव दिखलाई दिया है।

आप सभी लोगों ने देखा है कि कैसी-कैसी संकटकालीन परिस्थितियों में उन्होंने अपने गम्भीर सुझावों द्वारा हम लोगों की रक्षा की है और जब आग में कूद पड़ने का समय आया है तो किस प्रकार वह देवी निर्भीकतापूर्वक मुसकराते हुए ज्वाला की लपटों में घुस गई है।"

आचार्यजी के शब्दों पर उमादेवी के उस स्वर्णिम इतिहास की छाप थी जिसका एक-एक पन्ना उपस्थित महानुभावों ने गीता के पृष्ठों के समान पढ़ा था।

मिस्टर सिन्हा के सम्मुख इस समय उमादेवी का गत जीवन प्रतिभाकार-रूप में आकर खड़ा हो गया। वह भावुकतापूर्ण स्वर में गद्गद होकर बोले, "निस्संदेह आचार्यजी ! उमादेवी का व्यक्तित्व महान् है। उस व्यक्तित्व ने भारतीय जन-जीवन के सम्मुख कर्त्तव्य की कसौटी प्रस्तुत की है, साहस का उदाहरण पेश किया है। उनके गौरव-मय जीवन ने हम सभी के जीवन को प्रकाश दिया है।

हमारी कल की गोष्ठी में उनका उपस्थित होना नितान्त आवश्यक था।"

जलपान के पश्चात् सब लोगों ने प्रस्थान किया। आचार्यजी ने इन सबके ठहरने का प्रबन्ध बिड़ला मन्दिर की धर्मशाला में किया था।

सब लोगों के चले जाने पर आचार्यजी के मन में आया कि वह स्वयं जाकर उमादेवी को देख आयें।

आचार्यजी अपने को रोक नहीं सके। वह चप्पलें पहनकर बद्रीपण्डित से बोले, "बद्रीपण्डित! तुम तनिक जागते रहना। मैं अभी आता हूँ।"

इतना कहकर वह हमारी कोठी की ओर चल दिए।

आचार्यजी का मन बहुत प्रसन्न था। वह पैदल ही हमारी कोठी के द्वार पर आ गए।

मैं इस समय सोने की तैयारी में था और उमादेवी सो गई थीं।

तभी मेरे कानों में आचार्यजी की चिर परिचित आवाज आई।

मैं तुरन्त अपने कमरे का द्वार खोलकर कोठी के द्वार की ओर लपका, जहाँ ताला लगा हुआ था।

वहाँ पहुँचकर मैंने कहा, "आचार्यजी!"

आचार्यजी बोले, "हाँ यतीन्द्र बाबू! मैं ही हूँ। सतीश ने उमा का ज्वर उतर जाने की सूचना दी तो तुरन्त देखने के लिए आना चाहता था परन्तु तभी कुछ मेहमान आ गये। उन लोगों से अब अवकाश मिल पाया है।

तुमने कोठी का ताला बन्द कर लिया इससे प्रतीत होता है कि समय काफी हो गया है।"

इतनी बातें आचार्यजी कोठी के बन्द फाटक से बाहर खड़े-खड़े ही कह गए।

मैं बोला, "आपने बहुत कष्ट किया इस समय। तनिक ठहरिये मैं चाबी लाकर फाटक खोलता हूँ।"

आचार्यजी बोले, "उमा सो गई हो तो फाटक खोलने की आवश्यकता नहीं है। व्यर्थ उसकी नीद में विघ्न होगा। उसे आराम करने दो। मैं प्रातःकाल आऊँगा। फाटक खोलने का कष्ट न करो।"

मैं बोला, "अभी-अभी आँखें झपक गई हैं उमादेवी की।"

"तब ठीक है। उसे सोने दो। रात्रि को ठीक नीद आने से भी बीमारी दूर भागती है।" वह मुसकराकर बोले "मैं अब चलता हूँ।" और चल दिए।

मैं उन्हें नमस्कार करके अपने कमरे में लौट आया।

उमादेवी शान्तिपूर्वक सो रही थी। इस समय उनके चेहरे पर प्रसन्नता और शान्ति के चिह्न विराजमान थे। मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई उन्हें इस प्रकार शान्तिपूर्ण मुद्रा में निमग्न देखकर।

मैं फिर आराम से अपने पलंग पर लेट गया। थोड़ी देर में मुझे भी नींद आ गयी।

[८]

आचार्यजी दूसरे दिन प्रातःकाल हमारी कोठी पर पहुँचे तो वहाँ चाय का सब सामान जुटा हुआ था और उनके आने की प्रतीक्षा हो रही थी।

सतीश बाहर सड़क से ही आचार्यजी के साथ आया; क्योंकि उसने काफी दूर से उन्हें आते हुए देख लिया था और वह उनके स्वागत के लिए आगे बढ़ गया था।

उमादेवी और मैंने खड़े होकर आचार्यजी को नमस्कार किया।

आचार्यजी उमादेवी के चेहरे पर दृष्टि पसारकर बोले, "उमा! आज तुम सचमुच स्वस्थ लग रही हो। तुम्हारे इतने लम्बे ज्वर को देखकर डाक्टरों ने जिस भयानक बीमारी की घोषणा की थी उसे सुनकर मेरे हृदय का साहस विचलित हो गया था। परन्तु मैं तुम्हारे साहस की दाद देता हूँ कि तुम पर डाक्टरों के निर्णय का किंचित्-मात्र भी प्रभाव नहीं हुआ।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "उसका प्रभाव मुझ पर पड़ा ही नहीं, ऐसी बात नहीं है आचार्यजी! यदि न पड़ता तो मैं बहुत दिन पहले स्वस्थ हो गयी होती। डाक्टरों के निर्णय का मेरे ऊपर गहरा मानसिक प्रभाव पड़ा, परन्तु मैंने धैर्य और साहस के साथ काम लिया और अपने मस्तिष्क को बहुत कम बीमारी के विचार में चिन्ता-ग्रस्त होने दिया।

कभी-कभी यह आपके भाई साहब भी जब चिन्तित होकर उस विषय को पारस्परिक वार्त्ता में लेकर बैठ जाते थे तो मैं इन्हें उस विषय पर बातें करने को मना कर देती थी।

हम तीनों व्यक्ति चाय की मेज़ पर बैठ गये। सतीश भी हमारे पास बैठा था।

तभी उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "आपने मुझे आखिर जिला कर ही दम लिया आचार्यजी। मालूम देता है कि अभी आप कोई नया आन्दोलन छेड़कर मुझे फिर जेल भिजवाना चाहते हैं।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी खिलखिलाकर हँस पड़े और खूब हँसे। फिर अपने नेत्रों की पुतलियों को उमादेवी के चेहरे पर पसार-कर बोले, "सचमुच उमा! मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है। जिस दिन से भी तुमसे सम्पर्क हुआ है, बराबर काँटों के ही मार्ग पर घसीटा है। न जाने तुम्हें मुझमें क्या आकर्षण दिखलाई दिया कि तुम यतीन्द्र भैया के

शान्त कविता-कानन प्रदेश का परित्याग कर मेरी राजनीति के बीहड़ बियावान जंगल में प्रवेश कर गई।

इतना कहकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "परन्तु अब मेरा कोई कार्यक्रम जेल जाने का नहीं है उमा! राजनीति को मैंने परित्याग कर दिया है।"

आचार्यजी की बात सुनकर यतीन्द्र बाबू हँसकर बोले, "आप राजनीति का परित्याग नहीं कर सकते आचार्यजी! यह मैं आपको लिखकर दे सकता हूँ। कितने ही दिनों से मैं आप दोनों की यह बात सुनता चला आ रहा हूँ कि आपने राजनीति से किनारा कर लिया, परन्तु आप जब बातें करते हैं तो राजनीति की ही करते हैं, शिकायतें जब करते हैं, राजनीतिज्ञों की करते हैं। और कभी-कभी झुँझलाकर उन्हें उखाड़ फेंकने की भी बातें करते हैं। आखिर यह सब राजनीति नहीं तो और क्या है?"

यतीन्द्र बाबू की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "मेरे राजनीतिक चरित्र ने आपके गृहस्थ जीवन में अशान्ति पैदा की, इसका मैं दोषी अपने को गिनता हूँ यतीन्द्र बाबू! परन्तु यह सच है कि यह सब हुआ अनायास ही। मैंने इसके लिए कभी कोई प्रयास नहीं किया।"

आचार्यजी की सरल और भोली बात सुनकर मेरे हृदय में मिठास की धारा बह चली। मैं स्नेह-भरी दृष्टि से आचार्यजी के चेहरे पर नेत्र पसारकर बोला, "आपकी राजनीति से मेरे गृहस्थ जीवन में कभी कोई अशान्ति नहीं पैदा हुई आचार्यजी! बल्कि आपको पाकर मैंने सर्वदा यही समझा है कि इस परिवार को अपने दुःख-दर्द का एक साथी मिल गया—मुझे मेरी सरपरस्ती के लिए बड़ा भाई मिल गया।"

उमादेवी मेरी और आचार्यजी की बातों में रस ले रही थीं। वह मुग्ध दृष्टि से कभी आचार्यजी और कभी मेरी ओर निहार रही थीं।

आचार्यजी बोले, "यतीन्द्र बाबू ! मैं सचमुच ही जीवन में अन्तिम निश्चय कर चुका हूँ कि अब राजनीति में कोई भाग नहीं लूँगा। मैं अपना शेष जीवन समाज-सेवा में लगाने का निर्णय कर चुका हूँ।

अपने जीवन का भावी कार्यक्रम निर्धारित करने के निमित्त ही मैंने आज अपने उन साथियों की एक सभा बुलाई है जिन्होंने सक्रिय राजनीति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।"

"कैसी सभा ?" उमादेवी ने उत्सुकतापूर्वक कहा।

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "इसीलिए मैंने तुम्हें आज तक इसके विषय में कोई संकेत नहीं दिया था; क्योंकि मैं जानता था कि बात तुम्हारे मस्तिष्क में पड़ी और तुमने उस पर विचारना प्रारम्भ कर दिया।

आज जब मुझे इस बात का निश्चय हो गया है कि तुम्हें रोग ने मुक्त कर दिया है तो मैंने इसका जिक्र किया।

सभा के पश्चात् आज संध्या की गोष्ठी का कार्यक्रम मैंने तुम्हारे ही मकान पर रखा है। बिहार से मिस्टर सिन्हा, लखनऊ से डाक्टर आभा, इन्दौर से प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त, पंजाब से सरदार यशवन्तसिंह, मद्रास से मिस्टर गौंडप्पा इत्यादि अपने सभी पुराने साथी पधारे हैं।" इतना कहकर आचार्यजी ने एक फाइल, जिसमें संध्या की गोष्ठी-सम्बन्धित सब कागजात थे, उमादेवी के हाथों में दे दिया।

उमादेवी ने फाइल मेज पर रख दिया और फिर मुसकराकर बोलीं, "इस बार आचार्यजी आपने वास्तव में कमाल कर दिया।"

"क्यों ? कैसे ?" आचार्यजी ने मुसकराकर पूछा।

"और नहीं तो क्या ? जब आप किसी बात को मुझसे भी गुप्त रखे रहे तो यह कमाल नहीं तो और क्या है ?" उमादेवी बोलीं।

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "रोग की दशा में तुम्हारे मस्तिष्क को मैं बोझिल नहीं कर सकता था उमा ! यदि कल मुझे तुम्हारे

ज्वर के उतर जाने की सूचना न मिलती तो यह गोष्ठी तुम्हारी अनुपस्थिति में ही सम्पन्न होती।

गोष्ठी में भाग लेने वालों का सौभाग्य है कि तुम इस शुभ अवसर पर रोग से मुक्त हो गईं।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी कुछ लजा-सी गईं।

तभी आचार्यजी खड़े होकर बोले, "मैं अब चलना चाहूँगा। ग्यारह बजे बड़ी सभा होगी। उसका आयोजन मेरे मकान पर है। संध्या की गोष्ठी में केवल चुने हुए प्रतिनिधि भाग लेंगे, वह यहाँ होगी।

यतीन्द्र भैया चाहें तो हमारी सभा में भाग लें। इसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

यतीन्द्र बाबू मुसकराकर बोले, "मैं अवश्य भाग लूँगा उसमें।"

"मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।" आचार्यजी बोले।

कोठी के द्वार तक उमादेवी और मैं आचार्यजी के साथ-साथ गये और सतीश तो उनसे बातें करता हुआ उनके साथ ही चला गया।

आचार्यजी के चले जाने के पश्चात् मैंने आचार्यजी के कल रात्रि में ग्यारह बजे उन्हें देखने आने की सूचना दी तो वह मुसकराकर बोलीं, "आचार्यजी का मुझ पर अपार स्नेह है।"

[९]

ठीक ग्यारह बजे आचार्यजी के मकान पर देश के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए कार्यकर्ताओं की सभा जुटी। सभा निश्चित समय पर प्रारम्भ हुई।

आज की सभा का सभापतित्व-पद मिस्टर सिन्हा ने ग्रहण किया।

सभा प्रारम्भ होने पर आचार्यजी ने आज के आयोजन के अभिप्राय पर विस्तार से प्रकाश डाला।

जब सभा प्रारम्भ हुई तो यतीन्द्र बाबू जो अभी तक घर से बाहर ही घूम रहे थे, चुपके से अन्दर जाकर सब कार्यकर्ताओं के पीछे चुपचाप दरी पर बैठ गये।

आचार्यजी अपने संक्षिप्त भाषण में बोले, "साथियो ! आज हम लोग यहाँ किस अभिप्राय से एकत्र हुए हैं इसकी संक्षिप्त सूचना मैं आप सबके पास भेज चुका हूँ।

हम सभी ने एक समय था जब देश की राजनीति में प्रवेश करना अपना धर्म समझा था। वह समय था जब राजनीति बलिदान चाहती थी। उस समय आप सबने वह बलिदान दिया और अपने निरन्तर संघर्ष के पश्चात् देश को स्वतन्त्र कराया।

परन्तु आज राजनीति बलिदान नहीं माँगती। आज की राजनीति के पीछे ऐश्वर्य की दुनिया मुसकरा रही है। उस आकर्षण के पीछे आज के अधिकांश राजनीतिज्ञ दौड़ लगा रहे हैं।

हम सब आज इस दौड़ को एक स्वर से उपहासास्पद घोषित करते हैं और दूसरा पृथक मार्ग पर कदम बढ़ाने का निश्चय करते हैं।

हमारा देश विदेशी शासन के बन्धनों से मुक्त हो गया है, यह सच है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे देश की समस्याएँ हल हो गई हैं। अनेक समस्याएँ ज्यों-की-त्यों वर्त्तमान हैं। हमारी अनेकों सामाजिक समस्याएँ है। वे इतनी जटिल हैं कि उन्हें कानूनों से नहीं सुलझाया जा सकता। परम्परागत कुरीतियों और अन्धविश्वासों से संघर्ष लेना विदेशी शासकों से संघर्ष लेने से कम कठिन और कम महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है।

हम देख रहे हैं, राष्ट्रीय जीवन में कुरीतियाँ बढ़ती जा रही हैं। इससे हमारा राष्ट्र पतनोन्मुख हो रहा है। राष्ट्र की इस दशा का सुधार

शासन के अंकुश से नहीं हो सकता और यदि सच पूछो तो होना भी नहीं चाहिए ; क्योंकि अंकुश की नोक दिखलाकर सुझाया गया मार्ग चाहे सही भी हो, आत्मा को स्वीकार करने में कठिनाई होती है। अंकुश के भय से अपनाया गया मार्ग अपना मार्ग-सा ही प्रतीत नहीं होता।

हमें प्रेम और सद्भावना का मार्ग अपनाना है और उसीके द्वारा राष्ट्रीय जीवन की कमजोरियों पर प्रकाश डालना है।"

इसके पश्चात् आचार्यजी ने अपनी योजना के कुछ अंश पढ़कर सुनाये और सतीश ने उसकी छपी हुई प्रतियाँ उपस्थित सज्जनों में बाँटीं।

आचार्यजी के पश्चात् डा० ओझा, प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त, सरदार यशवन्तसिंह और मिस्टर गौंडप्पा ने अपने विचार व्यक्त किये। कुछ लोगों ने कुछ प्रश्न किये और आचार्यजी ने बड़े प्रेम से उनकी शंकाओं का समाधान किया।

अन्त में मिस्टर सिन्हा ने अपना भाषण दिया जिसमें आचार्यजी की योजना का ज़ोरदार समर्थन था।

उपस्थित सज्जनों में से एक अन्तरंग सभा का चयन किया गया जिसकी गोष्ठी संध्या को श्रीमती उमादेवी के मकान पर होने की घोषणा की गई।

सभा विसर्जित होने पर मैं अपने स्थान से उठकर आचार्यजी के पास पहुँचा तो आचार्यजी मुसकराकर बोले, "यतीन्द्र बाबू, अब पधारे हैं आप। चलिये कोई बात नहीं। आप आये तो सही।"

मैंने मुसकराकर उत्तर दिया, "मैं अब नहीं आया हूँ आचार्यजी ! मैंने आपका पूरा भाषण सुना है और मुझे प्रसन्नता हुई कि आपके आज के भाषण में राजनीति की गंध नहीं थी। यदि आप सच पूछें तो मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय जीवन में जितनी पोल और

चालबाजी घुस गई है यह सब वर्तमान राजनीति की ही देन है। इस ओछी और छिछली राजनीति से राष्ट्रीय जीवन की रक्षा करना नितान्त आवश्यक है। इसने राष्ट्रीय जीवन को विषाक्त कर दिया है, पारस्परिक प्रेम और सद्‌भावना को जड़-मूल से उखाड़कर फेंक दिया है।"

मेरे विचार में आचार्यजी ने अनुभव किया कि मानो उनकी अपनी आत्मा बोल उठी। वह गद्‌गद होकर बोले, "आपने सही अनुमान लगाया है राजनीति के प्रभाव का यतीन्द्र भैया!"

आचार्यजी ने मेरा मिस्टर सिन्हा, डा० ओझा, प्रो० लक्ष्मीकान्त, सरदार यशवंतसिंह और मि० गौंडप्पा से परिचय कराया।

इन सभी व्यक्तियों के नामों से मैं परिचित था।

मैं उमादेवी के मुख से अनेक बार उनकी प्रशंसा सुन चुका था परन्तु मिलने का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हो सका था।

आज की सभा के कार्यक्रम से सभी उपस्थित सज्जनों को सन्तोष हुआ।

आचार्यजी ने आज संध्या की गोष्ठी में निश्चित होने वाले कार्यक्रम पर विचार करने के लिए दूसरे दिन उसी समय अपने मकान पर दूसरी सभा की घोषणा की और फिर आज की सभा विसर्जित की गई।

[१०]

मैं आचार्यजी से विदा होकर अपने घर पर आया तो मैंने देखा कि उमादेवी अपने कमरे में बैठी कुछ लिख रही थीं।

मैंने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "उमादेवी, आज आचार्यजी का संक्षिप्त-सा वक्तव्य सुनकर आत्मा प्रसन्न हो गई।

आचार्यजी का व्यक्तित्व सचमुच महान् है। प्रदेश के मुख्य मन्त्री-पद का निमंत्रण ठुकराकर इस प्रकार राजनीति का परित्याग कर देने वाला यह पहला ही उदाहरण मेरे सामने है। वरना अधिकांश लोग पदों पर इस प्रकार चिपककर बैठ गये हैं कि जैसे गाड़ी के पहियों की चीकट चिपट जाती है। वे लोग राष्ट्र की गाड़ी की चाल को जाम कर देने वाले व्यक्ति हैं। वे लोग अपना आत्मविश्वास खो चुके हैं और किसी प्रकार तिकड़मों से अपने पदों पर चिपके रहना चाहते हैं।"

मेरे मुख से आचार्यजी की प्रशंसा सुनकर उमादेवी ने लिखना बन्द करके मेरे मुख पर अपनी प्रेमपूर्ण दृष्टि फैलाई और फिर धीरे-धीरे बोलीं, "आचार्यजी के जीवन में त्याग, साहस और प्रेम का महान् सामंजस्य है। कोई आकर्षण उन्हें उनकी आत्मा की आवाज के प्रतिकूल नहीं ले जा सकता।"

मैं बोला, "आज डा० ओझा, मिस्टर सिन्हा, प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त, सरदार यशवंतसिंह और मि० गौंडप्पाजी से भी आचार्यजी ने मेरा परिचय कराया। सभी से मिलकर आत्म-सन्तोष हुआ। उनकी सौम्यता का मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

उमादेवी गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "इन सभी लोगों ने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। इनमें से एक-एक व्यक्ति का जीवन-चरित्र राष्ट्रीय जीवन की माला का अमूल्य रत्न है।"

अपने-अपने प्रदेशों में इन सभी का बड़ा भारी सम्मान है। लोग-बाग इनके संकेतों पर न्यौछावर हो गये हैं।"

मैं प्रसन्नतापूर्वक बोला, "उमादेवी! तुम्हें यह जानकर हर्ष होगा

कि इस बार तुम्हारे साथ-साथ मैं भी आचार्यजी के कार्यक्रम में सक्रिय भाग लूँगा। मैं तुम्हें अब अकेले दौड़-भाग नहीं करने दूँगा।"

मेरी बात सुनकर उमादेवी का चेहरा खिल उठा। उनकी मुसकराहट में एक आकर्षण था। वह धीरे-धीरे बोलीं, "आपके आचार्यजी के कार्यक्रम में सक्रिय भाग लेने के निश्चय का मैं हृदय से स्वागत करती हूँ। आचार्यजी को जब आपका यह निर्णय ज्ञात होगा तो असीम प्रसन्नता होगी।

भावी जीवन में आप मेरा सहारा बनकर साथ-साथ चलेंगे, इससे निश्चित रूप से मुझे बल मिलेगा। फिर अब बूढ़ी भी तो हो गई हूँ मैं। जवानी का वह जोश अब नहीं रहा जो तूफानों से टक्कर लेने के लिए हर समय नसों में दौड़ा करता था।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी सतीश के साथ-साथ मिस्टर सिन्हा वहाँ आ पहुँचे।

सिन्हा साहब को देखकर उमादेवी और मैं खड़े हो गये।

सिन्हा साहब की आयु इस समय सत्तर से ऊपर उतर चुकी थी परन्तु उनकी चाल में तनिक भी बुढ़ापा नहीं झलकता था। मुँह में दाँत एक भी नहीं रह गया था परन्तु गाल पिचके नहीं थे। चेहरे पर वही पुरानी मुसकराहट थी जो उमादेवी ने आज से सात वर्ष पूर्व अपने बिहार के दौरे में देखी थी।

सिन्हा साहब उमादेवी को देखकर बोले, "अरे! यह क्या कर लिया तुमने उमा? तुम्हारा स्वास्थ्य इतना कैसे गिर गया?"

सिन्हा साहब की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "स्वास्थ्य गिर गया, यह मैंने नहीं गिराया है सिन्हा साहब! मैंने तो यह किया है कि मैं इतनी लम्बी और घातक बीमारी को मात देकर भी आपके सम्मुख जिन्दा खड़ी हूँ।"

सिन्हा साहब के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठने पर उमादेवी और मैं भी बराबर की दो कुर्सियों पर बैठ गये ।

सिन्हा साहब बोले, "बीमारी ने कितना दुर्बल बना दिया है तुम्हें उमा ! आज से दस वर्ष पूर्व जिसने तुम्हें देखा था, वह तुम्हारा यह रूप देखकर कठिनाई से पहचान पायेगा । परन्तु हाँ तुम्हारी वाणी में अभी वही ओज वर्तमान है जो पहले था और चेहरे की मुस्कराहट में भी कोई अन्तर नहीं आया ।

आचार्यजी से तुम्हारी बीमारी की सूचना मुझे आज ग्यारह बजे सभा प्रारम्भ होने से पूर्व ही मिली । जी चाहा कि तुरन्त तुमसे आकर मिलूँ, परन्तु सभा के कार्यक्रम ने नहीं आने दिया ।

सभा समाप्त होने पर बेटे सतीश को साथ लेकर सीधा इधर आ रहा हूँ ।"

और फिर मेरी ओर देखकर मसखरे अन्दाज में बोले, "मैं आपको देखता ही रह गया और आप न जाने कब चुपके से खिसक आये ।"

मैं मुसकराकर बोला, "मुझे ज्ञान नहीं था इस बात का कि आप इधर आने वाले हैं । ज्ञात होता तो आपकी प्रतीक्षा करने में मुझे हर्ष होता ।"

सिन्हा साहब के चेहरे पर देखकर उमादेवी बोली, "बहुत वृद्ध हो गये आप भी सिन्हा साहब ! मुँह में एक दाँत भी नहीं रहा, परन्तु देख रही हूँ कि चाल-ढाल में वही जवानी की बू है ।"

उमादेवी की बात सुनकर सिन्हा साहब अपने बूढ़े मुँह को पसार कर जोर से हँस पड़े ।

फिर बोले, "उमा ! 'जवानी की बू' तुमने खूब कहा । सचमुच बू अभी तक जवानी की ही बनी हुई है । मुझे कभी यह लगता ही नहीं कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ । जब कोई गलत काम होता देखता हूँ तो मुझे उतना ही क्रोध आता है जितना पहले आता था । और जब कोई सही

काम सामने आता है तो उतनी ही प्रसन्नता होती है जितनी पहले होती थी। तब फिर तुम ही कहो कि मुझमें क्या अन्तर आया। यह शरीर कुछ अवश्य थक गया है। बस, शेष सब-कुछ वैसा ही है जैसा पहले था।"

सिन्हा साहब की बातों में मैंने और उमादेवी ने बहुत रस लिया। उनके शब्दों में से आत्मीयता उमड़ी पड़ रही थी। उन्हें सामने देखकर उमादेवी के सम्मुख अपना एक लम्बा जीवन-काल निखरकर आ गया। वे बहुत से क्षण याद आगये जब उन दोनों ने अपने-अपने स्थानों पर एक मन होकर एक ही साथ कार्य प्रारम्भ किया था।'

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "आप अभी पूरे जवान हैं सिन्हा साहब और जवान मैं भी हूँ। मेरे सूखे हड्डियों के ढाँचे को देखकर आप कहीं गलत अनुमान न लगा बैठियेगा।"

"क्या कह रही हो उमा! तुम्हारे विषय में गलत अनुमान लगाने वाला क्या सिन्हा ही रह गया है, जिसने अपनी आँखों के सम्मुख तुम्हारी जवानी का जौहर देखा है—वह जौहर कि जिसके तेज के सम्मुख विदेशी सरकार भी तिलमिला उठती थी।" हृदय की भावना से उद्वेलित होकर सिन्हा साहब बोले।

कुर्सी पर बैठे-बैठे उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये और फिर धीरे-धीरे कहा, "उमादेवी! तुम्हारे गौरवपूर्ण कारनामे मुझसे छिपे नहीं हैं। तुम आयु में मुझसे छोटी अवश्य हो परन्तु सच यही है कि मेरा जब से भी तुमसे और आचार्यजी से सम्पर्क बना है, आप दोनों को आदर्श मानकर आचरण किया है।"

उमा मुसकराकर बोलीं, "आचार्यजी के साथ आपने मि० सिन्हा व्यर्थ ही मेरा नाम जोड़ दिया। आचार्यजी तो हैं ही अनुकरणीय प्राणी।"

सिन्हा साहब मुसकराकर बोले, "तुम्हें लज्जा आती है अपनी

प्रशंसा सुनने में उमा ! बड़ी विचित्र बात है। अरे ! यह युग प्रशंसा-पत्र छपवाने का है, अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कराने का है, पत्रों में बड़े-बड़े चित्र छपवाने का है। हमारे देश के महान् नेता और मंत्रीगण नित्य यही सब-कुछ तो करते हैं। और एक तुम हो कि एक साथी की सही प्रशंसा के दो शब्द सुनकर भी छुई-मुई की भाँति मुर्झाई जा रही हो।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "कुछ भी सही सिन्हा साहब ! परन्तु आपने मेरी छुई-मुई से उपमा खूब दी। मैं अपनी प्रशंसा का भार नहीं सँभाल सकती। इसे मैं आपके सम्मुख अपने साहस की कमी ही मान लेती हूँ।"

"बिलकुल कमी उमादेवी ! इसी कमी के कारण तो तुम कहीं विदेश में राजदूत बनकर नहीं जा सकीं।"

इतना कहकर मि० सिन्हा खिलखिलाकर हँस पड़े।

क्या ग़ज़ब की मस्ती थी सिन्हा साहब की हँसी में कि क्या कोई तीस वर्ष का जवान हँसेगा ऐसी हँसी।

मैं और उमादेवी सिन्हा साहब की बातों में आनन्द ले रहे थे।

सिन्हा साहब इस समय अधिक देर नहीं ठहरे; क्योंकि उन्हें अपने कुछ अन्य मित्रों के पास भी मिलने जाना था।

वह खड़े होकर बोले, "अच्छा उमा ! मैं अब जा रहा हूँ। संध्या को तुमसे फिर यहीं भेंट होगी।"

मैं सिन्हा साहब को काफी दूर तक छोड़ने गया।

[११]

उमादेवी का चित्त आज बहुत प्रसन्न था। कितने दिन के बिछुड़े हुए साथियों से आज भेंट होगी, इसकी उनके हृदय में हार्दिक प्रसन्नता थी।

संध्या की गोष्ठी के लिए मैंने अपने ड्राइंग-रूम में प्रबन्ध कराया। कमरे की कुर्सियाँ निकलवाकर घर के आँगन में पहुँचवा दीं और फर्श पर दरी बिछवाकर उस पर कालीन डलवा दिये।

संध्या को निश्चित समय पर गोष्ठी में निमंत्रित महानुभाव पधारे और गोष्ठी का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। देश की वर्त्तमान दशा पर पहले सबने विचार किया। राष्ट्र के जीवन की उन गाँठों को खोल-खोलकर देखा गया जो उसकी प्रगति में बाधक हैं।

मि० गौंडप्पा ने सीधा आरोप सरकार पर लगाया कि "हमें अपनी सरकार से जो आशाएँ थीं उन्हें पूर्ण करने में हमारी सरकार नितान्त असफल सिद्ध हुई है। जनता में फैले अन्धविश्वास को देश के नेताओं ने अपने राजनीतिक दृष्टिकोण से दूर करने का प्रयत्न ही नहीं किया वरन् और बढ़ावा दिया है।

इस शासन-काल में भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिला है। घूसखोरी का बाजार विदेशी शासन की अपेक्षा भी आज अधिक गर्म है।

शासन की बागडोर इतनी ढीली पड़ गई है कि बहुत-सी योजनाएँ कार्यरूप में परिणत होते-होते निरर्थक हो जाती हैं।"

मि० गौंडप्पा की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "मि० गौंडप्पा! आपको क्रोध आ गया। और आना भी चाहिए। किसी भी राष्ट्र के हितैषी के सम्मुख यदि उसके राष्ट्र का यह चित्र उपस्थित हो, तो उसे क्रोध आयेगा ही।

परन्तु क्रोध समस्याओं का हल नहीं है। और ठीक इसी प्रकार सरकार या किसी अन्य पर दोषारोपण से भी कोई लाभ न होगा।

हम लोग आज देश-सेवा के उस नये मार्ग की खोज के लिए एकत्रित हुए हैं जिस पर चलकर या राष्ट्र को चलाकर उसका हित किया जा सके, अपना हित किया जा सके।"

"निस्संदेह हमारे एकत्रित होने का यही लक्ष्य है, श्रीमती उमादेवी ! सिन्हा साहब ने तन्मयता के साथ कहा और उमादेवी के विचार सुनने के लिए अपने कान उनकी ओर कर दिये।

इस समय गोष्ठी के सब लोगों की दृष्टियाँ उमादेवी के चेहरे पर टिकी थीं।

उमादेवी गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "मैं इस समय कोई नई बात आपके समक्ष रखने नहीं जा रही हूँ। मैं ठीक वही कहूँगी जो कुछ आचार्यजी ने अपनी योजना में छापकर आप सबके पास पर्याप्त समय पूर्व भेज दिया है। मुझे इसका अध्ययन करने का अवसर आज ही मिला है।

इसका अध्ययन करके मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि आचार्यजी को अपने जीवन का इतना लम्बा और मूल्यवान समय राजनीति के अर्पण करके भी आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई। देश स्वतन्त्र हो गया, यह शान्ति अवश्य मिली, परन्तु देश की जनता का जीवन आज भी एक महान् समस्या बना हुआ है। उसमें महान् अशान्ति है।

मुझे लगता है कि जनता के इस अशांत चित्त पर मरहम लगाने का आचार्यजी बीड़ा उठाना चाहते हैं।"

उमादेवी की बात सुनकर मि० सिन्हा मुक्त कंठ से बोल उठे, "बहुत सुन्दर व्याख्या की है तुमने उमादेवी आचार्यजी की विचारधारा की। बहुत संक्षेप में आचार्यजी का मन्तव्य तुमने स्पष्ट कर दिया।"

सिन्हा साहब की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "परन्तु सिन्हा साहब ! आचार्यजी का मन्तव्य इतना सूक्ष्म होने पर भी योजना बड़ी विशाल है। बापू के कार्यक्रमों की इसके अक्षर-अक्षर पर छाप

दिखलाई दे रही है। जन-जीवन में प्रवेश करने का सुन्दर माध्यम आपने चुना है।

यदि किसी राष्ट्र में कोई बीज बोना है तो उसके बच्चों की बुनियाद में वह बीज डालना चाहिए। भविष्य का चरित्रनायक हमारा आगामी बालक-समाज है, जिसके चरित्र-सम्बन्धी विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। उनके सम्मुख आ रहे हैं स्वार्थपूर्ण जीवन के उदाहरण, उनके मानस पर लिखा जा रहा है घूसखोरी का इतिहास। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस कुप्रभाव को रोकें और मुझे विश्वास है कि आचार्यजी की योजना पर चलकर हमें निश्चित रूप से इसमें सफलता मिलेगी।"

उमादेवी के विचारों का सभी उपस्थित सज्जनों ने सम्मान किया। इसके पश्चात् आचार्यजी ने अपने विचार व्यक्त किये और उमादेवी की प्रशंसा की कि उन्होंने जो कुछ वह सोच रहे थे उसे इतने सरल शब्दों में व्यक्त कर दिया कि जैसे वह स्वयं भी नहीं कर पाये थे।

गोष्ठी के पश्चात् जलपान का आयोजन था।

सभी ने एक साथ बैठकर जलपान किया और फिर सबने विदा ली।

सबके चले जाने के पश्चात् मैं बोला, "आप लोगों की गोष्ठी बहुत सफल रही उमादेवी और तुम्हारे छोटे से वक्तव्य ने तो सब पर जादू ही कर दिया। ये सभी लोग मालूम देता है तुम्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "ये लोग नहीं, मैं इन सबको बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ सतीश के पिताजी। ये सभी लोग राष्ट्र के चुने हुए हीरे हैं, अमूल्य प्राणी हैं। ये कर्त्तव्य, साहस और सहृदयता की मूर्तियाँ हैं।"

उमादेवी के शब्दों में उन सबके प्रति असीम श्रद्धा टपक रही थी।

उसके पश्चात् उमादेवी ने मुझे इन सब महानुभावों के संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त सुनाये।

मैं मन्त्र-मुग्ध हो गया। उनके कारनामों को सुनकर।

उमादेवी बोलीं, "ये सभी लोग भारतीय स्वतन्त्रता के नभचुम्बी शानदार भवन के दृढ़ स्तम्भों में से हैं। इन्होंने उस इमारत को बना-कर तैयार किया है जिसमें बैठकर भारतीय राष्ट्र स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी उन्नति और समृद्धि पर विचार कर सकेगा और अपनी अमूल्य योज-नाओं द्वारा देश को आगे बढ़ा सकेगा।"

मेरा मस्तक उन सभी व्यक्तियों के सम्मुख नत मस्तक हो गया। मैंने अपार श्रद्धा के साथ उमादेवी के चेहरे पर देखा तो उनके पूरे राष्ट्रीय जीवन में जो-जो आपत्ति के क्षण उन पर बीते थे उन सबकी स्मृति एक साथ जागृत हो गई।

मैंने एक दृष्टि आराम करने के लिए अभी-अभी पलंग पर लेटी उमादेवी के चार हड्डियों के ढाँचे को देखा और फिर उन आपत्ति के पर्वत-शिखरों पर मेरी दृष्टि गई जिन पर मुसकराते हुए मैंने उमादेवी को चढ़ते देखा था तो मैं स्तम्भित-सा रह गया। मेरे मन ने कहा, "मेरी उमा, उमा नहीं शक्ति की अवतार है।"

मैं आचार्यजी के नये कार्यक्रम की प्रशंसा करता हुआ बोला, "उमादेवी! आचार्यजी ने राष्ट्रहित के लिए देश के वयोवृद्ध समुदाय को कार्य करने का बहुत सुन्दर मार्ग सुझाया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का अन्तिम काल समाज-सेवा के लिए अर्पित करना चाहिए। घर-गृहस्थ के अपने बाल-बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य से अवकाश ग्रहण करके जीवन के अन्तिम दिन परमार्थ-भावना से व्यतीत करने चाहिएँ।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "आचार्यजी के इस कार्य में सहयोग

देने में आपको कठिनाई नहीं होगी। इसमें जेल जाने की स्थिति पैदा नहीं होगी।"

उमादेवी की बात सुनकर मैं अपनी निर्बलता स्वीकार करता हुआ बोला, "उमादेवी ! यह सचमुच सत्य है कि मुझे जेल जाना एक बहुत ही कठिन कार्य लगता है।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "जब प्रथम बार मैं जेल गई थी तो मुझे भी बड़ा भय लगा था। परन्तु फिर धीरे-धीरे मैं उसकी अभ्यस्त हो गई।"

[१२]

आज उमादेवी का स्वास्थ्य कल से भी अच्छा था। वह प्रातःकाल मेरे साथ बागीचे में घूमने के लिए भी गईं।

घूमते-घूमते उमादेवी एक गुलाब के फूल के पास ठहर गईं। मैं भी वहीं खड़ा हो गया।

उमादेवी उस गुलाब पर लगे एक पुष्प को देखकर बोलीं, "सतीश के पिताजी ! मेरी सहेली शशिप्रभा को गुलाब के फूल बहुत प्रिय थे। आपने हमारी बाँकीपुर की कोठी का बागीचा देखा था। उसमें पूरी एक पंक्ति गुलाब के पौधों की लगी थी। वह शशि ने स्वयं लगवाई थी।"

फिर यहाँ जब यह बागीचा आपने लगवाया तो मैंने पूरी एक पंक्ति गुलाब के पौधों की लगवायी। यह शशि की ही यादगार है। इस पंक्ति को देखती हूँ और इस पर खिले फूलों को देखती हूँ तो मुझे शशि की

स्मृति हो आती है। मुझे लगता है कि इन फूलों की पंखुरियों में शशि के चेहरे की गुलाबी आकर भर गई है।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी आचार्यजी घूमते हुए इधर आ निकले।

आचार्यजी बोले, "सिन्हा साहब को रेल पर सवार कराकर आ रहा हूँ। बड़े ही स्नेही जीव हैं। एक पत्र डाल दिया तो खिंचे चले आये और उमा! चलते-चलते भी वह तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए सद्-कामनाएँ दे गये हैं।

उमा का ध्यान गुलाब की पंखुरियों से बँधा था। वह एक दम उससे हटकर आचार्यजी की बातों की ओर आया तो आचार्यजी को इस परिवर्त्तन के समझने में देर नहीं लगी।

वह मुसकराकर बोले, "आज उमा अपने बागीचे में इस प्रकार घूमने के लिए शायद काफी दिन पश्चात् आई है। इसीलिए गुलाब के फूलों की पंक्ति ने इतना आकर्षित कर लिया।"

उमादेवी ने मुसकराकर कहा, "मुझे गुलाब के फूलों ने आकर्षित नहीं किया आचार्यजी। आकर्षित उस स्मृति ने किया है जो इन फूलों की पंखुरियों से मेरी ओर झाँक रही है, मुसकरा रही है।"

"आखिर कौन-सी वह स्मृति है? क्या मैं भी उसका नाम सुन सकता हूँ? अवश्य ही वह यतीन्द्र बाबू के जीवन की कोई घटना होगी।" आचार्यजी बोले।

उमादेवी बोलीं, "वह घटना नहीं है आचार्यजी! वह मेरी सहेली शशिप्रभा है। आपने यदि ध्यान से देखा होगा तो उनकी कोठी में आपने इस बागीचे से भी घनी गुलाब की पंक्तियाँ देखी होंगी।

यह गुलाब की पंक्ति जो आप इस बागीचे में देख रहे हैं, यह उसी का स्मृति-चिह्न है।"

आचार्यजी का ध्यान राजा सुमेरसिंह की कोठी की ओर गया

और फिर उनके बागीचे में प्रवेश किया तो देखा कि एक नहीं कई-कई पंक्तियाँ गुलाब के फूलों से लदी वहाँ लहलहा रही थीं।

वह मुसकराकर बोले, "उमा तुम बहुत रहस्यमयी हो। तुम्हारा हृदय गम्भीर सागर के समान अपने अन्दर कितने रत्नों को छिपाये बैठा है, यह कोई नहीं जान सकता।"

सतीश ने अपने माता-पिता और आचार्यजी को बागीचे में खड़े देखकर माली से तीन कुर्सियाँ उनके बैठने के लिए पहुँचा दीं।

जब हम तीनों व्यक्ति कुर्सियों पर बैठ गये तो उमादेवी आचार्यजी की ओर मुँह करके बोलीं, "उस दिन आप राजा सुमेरसिंह की कहानी सुना रहे थे। आप, राजा सुमेरसिंह और बहादुरसिंह भारत लौट आये। आप राजनीति के मैदान में उतर पड़े। राजा सुमेरसिंह अपने राज्य में चले गये और बहादुरसिंह सरकारी अफसर बन गये। उसके पश्चात् क्या हुआ?"

बात उमादेवी ने इस प्रकार छेड़ी कि आचार्यजी कहानी आगे बढ़ाने से नाँ नहीं कर सके। बल्कि कुछ ऐसी भावुकता का उदय उनके हृदय में हुआ कि उनके मित्र राजा सुमेरसिंह के जीवन-पृष्ठ एक के पश्चात् एक खुल-खुलकर उनके सम्मुख आने लगे।

वह बोले, "उमा! राजा सुमेरसिंह का जीवन वास्तव में सुनने योग्य है। उन जैसे साहसी व्यक्ति मेरी दृष्टि में बहुत कम आये हैं।

वह विलायत से लौटकर सीधे सहसपुर चले गये। सहसपुर में उनके पहुँचने पर उनके पिताजी ने एक शानदार जशन किया। कमिश्नर और कलक्टर भी उस जशन में सम्मिलित हुए। छोटे-मोटे सरकारी अफ़सरों की तो कोई गिनती ही नहीं थी।

इस जशन में राजा सुमेरसिंह ने मुझे और बहादुरसिंह को भी आमंत्रित किया और हम दोनों ने भी उसमें भाग लिया।

मुझे उस जशन में सम्मिलित होकर न कोई विशेष प्रसन्नता ही

हुई और न दुःख ही । कुछ अंग्रेजी अफ़सरों की गुलामी का वातावरण वहाँ लगा, उससे थोड़ी आत्मा खिन्न हुई परन्तु बहादुरसिंह को वह शानोशौकत देखकर डाह हुई। उसे अपने अन्दर कुछ हीनता का अनुभव हुआ।

बहादुरसिंह मुझसे एकान्त में बोला, "भाई नरेन्द्र शर्मा ! देखी तुमने सुमेरसिंह की बेहूदगी ! कोई रियासत, न रियासत की दुम और जशन इतना ज़बरदस्त । मैंने बड़ी-बड़ी रियासतों के जशन देखे हैं। इतना ठाट-बाट उनके जशनों में भी नहीं होता जितना यहाँ देख रहा हूँ ।

देश के पैसे को ये लोग देखिये कितनी बेदर्दी से खर्च कर रहे हैं। क्या यह इनके बाप का रुपया है जो इस बेहूदगी से लुटा रहे हैं ?"

इस अन्तिम वाक्य से बहादुरसिंह ने मेरे मर्मस्थल को छूने का प्रयास किया।

मैं बहादुरसिंह की देश-भक्ति से पूर्व परिचित था। उसकी बातें सुनकर मुसकराता हुआ बोला, 'भाई बहादुरसिंहजी ! आप लोग दोनों राजकुमार ठहरे ! जो कुछ भी कर गुजरें वही कम है । ये जशन आप लोगों के ही ऐश के लिए रचे जाते हैं। हम लोग तो व्यर्थ दर्शक के रूप में आकर आपके आनन्द में बाधा ही उपस्थित करते हैं।"

मेरी बात सुनकर बहादुरसिंह बोला, "नरेन्द्र शर्मा ! तुम व्यर्थ हर स्थान पर मुझे सुमेरसिंह के बराबर न लगाया करो । मैं आखिर कहाँ का राजकुमार हूँ । नौकरी करता हूँ और अपना काम चलाता हूँ । इस तरह बैठे-बिठाये ऐश की छानने के लिए मेरे पिता ने मेरे लिए जायदाद नहीं छोड़ी।"

तभी अचानक ध्यान आया कि बहादुरसिंह से उसके पारिवारिक जीवन के विषय में पूछताछ करूँ । मैं बात बदलकर बोला, "अच्छा जाने दो इन बातों को और यह बताओ कि कहीं से भाभी

का भी कुछ प्रबन्ध किया या नहीं या अकेले ही मस्ती की छान रहे हो।"

मेरी बात सुनकर बहादुरसिंह मुसकराकर बोले, "कर रहा हूँ नरेन्द्र ! अभी हुआ नहीं है। परन्तु बहुत शीघ्र होने की आशा है।"

मैं हँसकर बोला, "हुआ क्यों नहीं अभी तक। कहीं किसी मोटी आसामी की खोज में होगे। इसीलिए देर हो रही है।"

मेरी बात सुनकर बहादुरसिंह को हँसी आ गई। वह धीरे से मेरे कान में बोला, "बात कुछ ऐसी ही है। परन्तु उसमें भी बीच में यार सुमेरसिंह ने अपना पैर फँसाया हुआ है। सुमेरसिंह की कोई विशेष इच्छा नहीं है और न ही वह उस लड़की से परिचित है। उसने उसे कभी नहीं देखा। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि यह एक बार देख ले तो पागल हो सकता है, परन्तु उसके मस्तिष्क पर तो प्रोफेसर विलियम की लड़की मिस मेरी ही चढ़ी हुई है। उसके दिल का कोना-कोना मिस मेरी के प्रेम से आच्छादित है।

यह जब लन्दन से चला था तो मिस मेरी को इसने विवाह का आश्वासन दिया था।

यहाँ आकर सुमेरसिंह में अपने पिता के सम्मुख मिस मेरी से विवाह करने का प्रस्ताव करने का साहस नहीं हुआ।

सुमेरसिंह के पिता ने इसका सम्बन्ध जब यह बहुत छोटा था तभी बाँकीपुर की राजकुमारी शशिप्रभा से जोड़ दिया था। शशिप्रभा अपने माता-पिता की अकेली सन्तान है। उसके पिता का भी स्वर्गवास हो चुका है।

ऐसी दशा में सुमेरसिंह के पिता राजा साहब, जो हमारी बिरादरी के सबसे चालाक और मक्कार व्यक्ति हैं, इस अवसर से चूकने वाले नहीं हैं। उनका दाँत बाँकीपुर रियासत पर बुरी तरह लगा है।

परन्तु यार नरेन्द्र शर्मा, मैं भी यूँ ही इस बूढ़े को बाँकीपुर की

रियासत नहीं हड़पने दूँगा। मैंने भी अपना पूरा-पूरा जाल बिछा दिया है।"

मैं मुसकराया और बोला, "तो यों कहो कि तुम्हारा जो संघर्ष विलायत में चल रहा था वह अभी समाप्त नहीं हुआ, बल्कि और प्रखर रूप धारण कर गया है।"

बहादुरसिंह मूँछों पर ताव देकर बोला, "तुमने कहा था न विलायत से लौटने पर कि मैं 'काठ का उल्लू' बन गया। अब देखना कौन 'काठ का उल्लू' बनता है।"

मैं मुसकराकर बोला, "बहादुरसिंह इतना ध्यान रखना कि यह टक्कर सुमेरसिंह से नहीं, उसके पिता राजा साहब से है। उनके सम्मुख ठहरना तुम्हारे बूते की बात नहीं है। जब तुम सुमेरसिंह से ही मात खा गये तो उनके सामने क्या खाकर ठहर सकोगे?"

बहादुरसिंह समझदार और चालाक व्यक्ति था। बोला, "यह मैं भली प्रकार जानता हूँ, परन्तु मैंने भी मछली के गले में काँटा फँसा दिया है। मैंने बाँकीपुर की महारानी को सुमेरसिंह और मिस मेरी के परस्पर लिखे गये पत्र दिखला दिये हैं। इस पर भी यदि वह अपनी पुत्री को गढ़े में धकेलना चाहें तो प्रसन्नतापूर्वक धकेल दें। परन्तु मुझे विश्वास है कि रानी काफी समझदार हैं और वह कदापि ऐसी भूल नहीं करेंगी।

मैं बहादुरसिंह की कूट चालों को सुनकर एक बार तो तनिक हिल-सा गया परन्तु तुरन्त ही मुझे सुमेरसिंह के पिताजी का ध्यान आया।

मेरे मस्तिष्क की विचलन काफूर की भाँति उड़ गई।

मैंने उनसे घंटों-घंटों बैठकर बातें की हैं। उनके व्यक्तित्व और उनकी बातों का मुझ पर प्रभाव पड़ा है।

मेरे मन ने कहा, जो वह चाहेंगे वही होगा। अपनी बिरादरी के

वह राजा हैं। उनकी बात को गिराने की शक्ति बेचारी बाँकीपुर की रानी में क्या होगी।

और फिर इतने पुराने सम्बन्ध को इस बहादुरसिंह की दी हुई दो-चार चिट्ठियाँ विचलित नहीं कर सकतीं।

मैं हँसकर बहादुरसिंह की पीठ ठोकता हुआ बोला, "कुछ भी सही यार बहादुरसिंह ! तुम भी हो कुछ, मैं यह मानता हूँ परन्तु मुझे तुम्हारी सफलता के आसार फिर भी दिखलाई नहीं दे रहे।"

मेरी बात सुनकर बहादुरसिंह मुसकराकर बोला, "न सही नरेन्द्र ! परन्तु यह जान लो कि इससे सुमेरसिंह के जीवन में एक भारी उथल-पुथल पैदा होगी। कम-से-कम इसके और इसके पत्नी के जीवन में एक दरार तो डाल ही दी मैंने।"

बहादुरसिंह की यह बात मुझे उस समय आंशिक रूप में स्वीकार करनी पड़ी, क्योंकि शशिप्रभा से मैं अपरिचित था।

तभी जशन की कार्यवाही प्रारम्भ हो गई। सामने मंच पर नृत्य और संगीत का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। सब लोग शान्त होकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये और वायुमण्डल संगीत और नृत्य के स्वर से भर गया। एक बार तो भूमि पर स्वर्ग उतर आया जैसा मुझे प्रतीत हुआ; क्योंकि इस प्रकार के जशन में भाग लेने का यह मेरा प्रथम अवसर था।

नृत्य और संगीत के पश्चात् मैंने क्या देखा कि उपस्थित सज्जनों के बीचोबीच घिरे चौक में सहसपुर के पंडित, राज्यपुरोहितजी ने प्रवेश किया और उनके साथ-साथ धूपदान तथा अन्य बहुत-सा दान-दहेज का सामान आना प्रारम्भ हो गया। धीरे-धीरे सामान का अम्बार लग गया।

जब सब सामान आ चुका तो सुमेरसिंह के पिताजी ने खड़े होकर कहा, "आज के इस जशन का आयोजन मैंने बेटे सुमेरसिंह के विलायत

से लौटने की प्रसन्नता में किया था। उस समय नया कार्यक्रम सामने नहीं था।

परन्तु इसी प्रसन्नता के अवसर पर परमात्मा ने मुझे एक और प्रसन्नता का अवसर प्रदान किया। मैंने सोचा कि क्यों न इन दोनों ही प्रसन्नताओं को मिलाकर एक कर दूँ।

सहसपुर से लगभग पचास मील की दूरी पर हमारी ही बिरादरी की प्रसिद्ध एक बाँकीपुर रियासत है। वहाँ के राजा हमारे बहुत घनिष्ठ मित्रों में से थे। वह हमारे लंगोटिया मित्र थे और बचपन हमारा और उनका एक ही जगह व्यतीत हुआ था।

बड़े होने पर भी हमारा पारस्परिक स्नेह और मुहब्बत कम नहीं हुई बल्कि एक-दूसरे के समय-बे-समय काम ही आते रहे।

एक दिन अचानक मुझे उनकी बीमारी की सूचना मिली तो मैं तुरन्त अपने राजवैद्य को साथ लेकर बाँकीपुर पहुँचा। परन्तु उनकी दशा बहुत खराब हो चुकी थी।

मुझे देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया।

मैं निकट जाकर बोला, "आप घबरायें नहीं। मेरे राजवैद्य मेरे साथ हैं। वह आपको निश्चित रूप से बचा लेंगे।"

मेरी बात सुनकर वह बोले, "मेरा बचना कठिन है राजा साहब! पता नहीं कितनी देर का मेहमान हूँ। मैंने आपको इस समय इसलिये कष्ट दिया है कि मेरे पश्चात् रानी अकेली रह जायेंगी और मेरी शशि ......"पूरा नाम भी न ले पाये कि उनके नेत्रों में जल भर आया और कंठ अवरुद्ध हो गया।

तनिक देर में फिर सँभलकर बोले, "मैंने अपने मन से आपके बेटे सुमेरसिंह को अपनी पुत्री शशिप्रभा के लिए वर-रूप में चुन लिया है। आप अनुमति दें तो इस कार्य को मरने से पूर्व पूरा करता जाऊँ। आपकी अनुमति का एक शब्द इस समय मुझे असीम शान्ति प्रदान करेगा।"

मैं उन्हें हृदय से अपना मित्र मानता था। उनके प्रस्ताव पर उस समय नां कहना मेरे लिए असम्भव था। मैंने हाँ कहदी और वह कार्य सम्पन्न हो गया। मैंने उनकी रानी के सम्मुख वचन दे दिया और उनकी रानी ने एक हीरों का हार मुझे भेंट-स्वरूप दिया।"

यह कहकर राजा साहब ने सहर्ष वह हार जो उन्होंने अपने गले में पहना हुआ था, उतारकर दिखलाया और फिर उसे सुमेरसिंह के गले में डालते हुए कहा, "यह इसकी अमानत थी, इसी के गले डाल रहा हूँ।"

इसी लगन के शुभ अवसर पर बाँकीपुर की रानी ने यह सब सौगात भेजी है। एक लाख रुपया नकद है और तीन लाख के गहने और अन्य सामान है।"

राजा साहब की यह बात सुनकर बहादुरसिंह के सीने पर साँप लोट गया। उसे लगा कि उसके पैरों के नीचे से भूमि खिसक गई और उसका इतना लम्बा-चौड़ा सब जाल काटकर यह बूढ़ा शेर दनदनाता हुआ सामने आकर मुसकरा रहा था।

हमलोग सबसे आगे की पंक्ति में बैठे थे। मैंने ध्यानपूर्वक देखा कि जब राजा साहब यह वृत्तान्त सुना रहे थे तो उनकी दृष्टि बराबर बहादुरसिंह पर ही गड़ी हुई थी और वह दुतकार-दुतकारकर कह रहे थे, "कमीने छोकरे! तू मेरे खानदान को दाग़ लगाना चाहता था। तेरी यह मजाल कि बाँकीपुर की रानी को मेरे विरुद्ध मरे। तुझे क्या मालूम कि मेरे बाँकीपुर और बाँकीपुर की रानी पर कितने-कितने उपकार हैं? तेरा गिड़गिड़ाना और मेरा आज्ञा करना बराबर कैसे हो सकते हैं? गिड़गिड़ाना गिड़गिड़ाना ही रहेगा और आज्ञा करना आज्ञा करना ही रहेगा।"

इस बीच में मैंने देखा उमा! कि जब-जब भी राजा साहब की दृष्टि बहादुरसिंह के चेहरे पर पड़ी तो बहादुरसिंह की आँखें जमीन

की ओर झुक गईं। उसका होश गुम हो गया और वहाँ बैठना उसके लिए कठिन हो गया। परन्तु उठ भी नहीं सकता था वह। दम घोंटे बेचारा चुपचाप बैठा ही रहा।

मैंने तभी चुपके से उसके कान में कहा, "कहो मेरा अनुमान गलत तो नहीं निकला बहादुर।"

उसने उसी घबराहट में उत्तर दिया, "परिणाम देख लेना इसका भी।"

आचार्यजी ने केवल इतना ही किस्सा कहा कि तभी उनके कानों में घंटे का टन-टन का स्वर आया। वह तुरन्त कुछ सकपकाकर बोले, "अरे, मैं तो किस्सा कहने बैठ गया उमा! मुझे भूल ही गया कि अभी बारह की गाड़ी से मिस्टर गौंडप्पा को जाना है।

अच्छा, मैं अब चलता हूँ। संध्या को आऊँगा और तभी आगे कहानी प्रारम्भ करूँगा।"

उमादेवी बोलीं, "आपको आवश्यक कार्य है इसीलिए जाने दे रही हूँ इस समय, वरना कथा इतनी रोचक हो गई थी कि बन्द करते दिल टूटता है।"

मेरे कानों में ये बातें शशिप्रभा के विवाह से पूर्व आई तो थीं, परन्तु इस तारतम्य के साथ नहीं, जैसे आपने सुनाईं। इन बहादुरसिंह महोदय ने रानी साहिबा का काफी दिमाग खराब किया और एक बार तो रानी कुछ विचलित भी होगई थीं परन्तु शशिप्रभा ने वह बात नहीं मानी। वह अपने पिताजी के निश्चय को किसी भी दशा में बदलने के लिए उद्यत नहीं थी। और दूसरे राज्य-मंत्री का मत भी सुमेरसिंहजी के ही पक्ष में था। उनकी दृष्टि में बहादुर की सुमेरसिंह के सम्मुख कोई पोजीशन नहीं थी।

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी हँस पड़े और हँसते-हँसते ही बोले, "राजा साहब की दृष्टि बड़ी पैनी थी उमा! बहादुरसिंह

उनके सामने एक नाचीज बच्चा था और बाँकीपुर की रानी को अक्ल में वह अपने नाखून के मैल के समान समझते थे।

बहादुरसिंह की चालबाजियाँ उन पर खुल गई थीं। स्वयं बाँकीपुर के राज्य-मंत्री ने उन्हें सब-कुछ बतलाया था। वह राज्य-मंत्री उनका अपना आदमी था। उसे उन्होंने इस विवाह के उपलक्ष में पच्चीस हजार का पुरस्कार दिया।"

उमादेवी हँसकर बोलीं, "पुरस्कार कहेंगे इसे आप?"

आचार्यजी ने हँसकर ही उत्तर दिया, "कुछ भी कह लो और कुछ भी समझ लो। जो हुआ मैंने तुम्हें बतला दिया।"

इतना कहकर वह उठकर खड़े हो गये। कोठी के द्वार तक उन्हें उमादेवी और मैं छोड़ने के लिए गये।

[१३]

उमादेवी और मैं शशिप्रभा की कथा में रस ले रहे थे। हमें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो घटना अब घट रही है।

संध्या को आचार्यजी आज कुछ देर से आये। आये हुए अतिथियों को विदा करने का झमेला था उनकी जान पर। उसीमें व्यस्त रहे।

पहले कुछ देर जाने वाले अतिथियों के विषय में बातें चलती रहीं। उन सबने उमादेवी के लिए जो संदेश दिये और सद्‌भावनाएँ व्यक्त कीं वे सब आचार्यजी ने कह सुनाईं और फिर मुसकराकर बोले, "मैं जानता हूँ कि अब तुम मुझसे शशिप्रभा की कहानी आगे बढ़ाने के लिए कहोगी।

परन्तु मैं चाय पिये बिना उसे प्रारम्भ नहीं करूँगा। सच बात यह है कि वह रोचक इतनी है कि मैं कहता ही चला जाऊँगा और

मेरा कंठ सूख जायगा। फिर, बीच में चाय पी तो कहानी का आनन्द बिगड़ जायगा।"

आचार्यजी की बात सुनते ही मैंने महाराजिन को चाय लाने के लिए आदेश दिया।

जब तक चाय आई और इधर-उधर की बातें चलतीं रहीं। कल की गोष्ठी की सफलता और पत्रों में छपे उसके समाचारों पर भी बातें होती रहीं।

तब तक महाराजिन चाय लेकर आ गई।

चाय पीकर आचार्यजी प्रसन्नतापूर्वक बोले, "बहादुरसिंह का जो कांड मैंने तुम्हें सुनाया, सुमेरसिंह को इसका कोई ज्ञान नहीं था। बहादुरसिंह ने उसके विरुद्ध यह कांड रचा और वह अनभिज्ञ रहा। यह वास्तव में सत्य ही था कि सुमेरसिंह इस विवाह के पक्ष में नहीं था। वह मिस मेरी को चलते समय विवाह का वचन देकर आया था और उसे हृदय से निभाना चाहता था।

परन्तु पिताजी के सामने एक शब्द भी बोलने का उसमें साहस नहीं था। उसके पिताजी जो कुछ कर रहे थे वह सहन कर रहा था। न कोई प्रतिपादन था और न कोई विरोध।

विवाह खूब धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। मैं और बहादुरसिंह दोनों ने शादी में भाग लिया। बारात में भी दोनों बाँकीपुर गये।

विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् सुमेरसिंह और शशिप्रभा का जीवन प्रारम्भ हुआ।

शशि पर सुमेरसिंह और मिस मेरी के पारस्परिक प्रेम का रहस्य खुल चुका था। सुमेरसिंह इस रहस्य से अपरिचित था परन्तु फिर भी जब शशिप्रभा उसकी हृदयेश्वरी बनकर उसके महल में आगई तो उसने उससे कभी कोई दुराव नहीं किया। कभी कोई बात उससे छिपाई नहीं।

सुमेरसिंह के पास मिस मेरी के पत्र आते थे। वे खुले हुए उसकी मेज़ पर पड़े रहते थे। उसने कभी भी उन्हें शशिप्रभा से छिपाने का प्रयास नहीं किया।

शशिप्रभा बहुत दिन तक जानकर भी अनजान बनी रही। उसने वे सभी पत्र पढ़े जिनमें सुमेरसिंह ने अपने विवाह का समाचार मिस मेरी के पास भेजा और वे भी पढ़े जो उनके उत्तर में सुमेरसिंह को मिस मेरी से प्राप्त हुए, परन्तु उनके विषय में कोई प्रश्न कभी नहीं किया, कोई पारस्परिक चर्चा कभी नहीं चली।

जीवन इसी प्रकार आगे बढ़ता गया।

सुमेरसिंह ने अपनी रियासत का कार्य-भार सँभाल लिया और अपने व्यवहार से जनता में अच्छी लोकप्रियता प्राप्त की।

इसी प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया।

इस एक वर्ष में सुमेरसिंह के सिर पर जो सबसे बड़ी विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा वह था उनके पिता राजा साहब का स्वर्गवास।

परन्तु सुमेरसिंह घबराये नहीं इस आपत्ति से। उन्होंने पूर्ण कुशलता के साथ अपने कार्य को सँभाला।

सुमेरसिंह और शशिप्रभा का जीवन बहुत स्नेह और पारस्परिक मान-सम्मान के साथ चल रहा था। आनन्द और उमंग के भी अवसर कम नहीं आते थे जीवन में परन्तु इधर कुछ दिन से शशिप्रभा यह अनुभव करने लगी थी अपने मन में कि उसके पति के मन में कुछ खिन्नता है। उनकी किसी आकांक्षा को परिस्थितियों ने कुचल दिया है। उनकी किसी आशा का सुमन समय के पैरों ने रौंद दिया है।

मिस मेरी और उसके पति के बीच हुए पत्र-व्यवहार को उसने पूरी तरह पढ़ा था और बराबर पढ़ती चली आ रही थी परन्तु इस विषय को लेकर कभी दोनों में बातचीत नहीं हुई थी।

आज रात्रि को जब राजा सुमेरसिंह शयनागार में पहुँचे तो शशि-प्रभा वहाँ पहले से उपस्थित थी।

राजा सुमेरसिंह का चित्त आज कुछ अधिक खिन्न था।

शशिप्रभा ने उनके मलिन मुख को देखकर पूछा, "आज आप इतने उद्विग्न से क्यों प्रतीत हो रहे हैं प्राणनाथ ?" शशिप्रभा अपने पति को प्राणनाथ ही कहकर सम्बोधित किया करती हैं।

राजा सुमेरसिंह ने पलंग पर बैठते हुए एक पत्र जो उनके हाथ में था, शशिप्रभा के हाथ में दे दिया।

शशिप्रभा ने उत्सुकता से पत्र खोलकर पढ़ा। पत्र मिस मेरी का था और उसमें उसकी अस्वस्थता की सूचना थी।

शशिप्रभा ने सरलतापूर्वक पूछा, "यह मिस मेरी कौन हैं ? क्या मैं इनका परिचय प्राप्त कर सकती हूँ आपसे ?"

राजा सुमेरसिंह सरल स्वभाव में बोले, "यह हमारे एक अध्यापक की कन्या हैं। जितने दिन मैं इंग्लैण्ड में रहा मेरा इनसे घनिष्ठ सम्पर्क रहा और सम्पर्क अन्त में पारस्परिक प्रेम में बदल गया।

मैं जिस समय इंग्लैण्ड से चला तो मिस मेरी के नेत्रों में जल भर आया। मैंने उसका हाथ चूमकर उसे विश्वास दिलाया कि मैं भारत पहुँचकर उसे भारत बुला लूँगा और उसके साथ विवाह भी करूँगा।

मैं यहाँ आया तो मेरे सम्मुख पिताजी की मान-मर्यादा और तुम्हारे साथ बने हुए लम्बे सम्बन्ध की बात आई। एक गम्भीर स्थिति पैदा हो गई।

इस समस्या में मैं कुछ दिन उलझा रहा; फिर जो हुआ वह तुम्हारे सम्मुख है। तुमसे कुछ छिपा नहीं है।

मुझे हार्दिक खेद है कि मैं मिस मेरी को दिया हुआ वचन पूर्ण न कर सका। वह अपने मन में यही कहेगी कि भारतवासी धोखेबाज होते हैं। उनका कोई चरित्र नहीं होता। वे अपनी ऐयाशी के सम्मुख

दूसरों के जीवन का महत्त्व कुछ नहीं आँकते ।" कहते-कहते राजा सुमेरसिंह की जबान बन्द हो गई । उनकी आँखों में आँसू झलक आये । उनका हृदय उनके नेत्रों में उमड़ आया ।

शशिप्रभा ने उस समय भारतीय वातावरण के अनुसार दैविक स्वभाव से कार्य किया । उस दिन उसने अपने आपको राजा सुमेरसिंह की दृष्टि में पत्नी के रूप में नहीं एक देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया । आदर्श की पराकाष्ठा कर दी ।

शशिप्रभा राजा सुमेरसिंह से सटकर बैठ गई और स्नेहपूर्वक उनका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "आप मिस मेरी को यहीं क्यों न बुला लें ? फिर रह जायेगी विवाह की समस्या, सो मेरी ओर से उसके अन्दर भी आपको कोई बाधा नहीं मिलेगी ।"

यह बात शशिप्रभा ने इतनी सरलता और स्नेह के साथ कही कि राजा सुमेरसिंह शशि के मुख पर देखते ही रह गये । उनका हृदय गद्गद हो उठा उस भारतीय नारी की कोमलता और सहृदयता पर कि जिसने अपने पति की प्रसन्नता के लिए अपना पूरी तरह प्राप्त किया हुआ एकाधिकार फिर उसके हाथों में सौंप दिया ।

राजा सुमेरसिंह कुछ देर शशिप्रभा के चेहरे पर गम्भीरतापूर्वक देखते रहे और फिर उन्होंने स्नेहावेश में आकर शशिप्रभा को अपनी बाहुओं में आबद्ध कर लिया ।

वह फिर खड़े होकर कमरे में घूमने लगे । मिस मेरी के भारत आने, उससे विवाह करने और उससे पैदा होने वाली जातिगत समस्याओं पर विचार करने लगे परन्तु वे सब उन्हें मानवीय प्रेम के सम्मुख हेय प्रतीत हुईं ।

उन्होंने बहुत सरल शब्दों में शशिप्रभा से एक बार फिर पूछा, "तो तुम्हारी अनुमति है शशि मिस मेरी को यहाँ बुलाने की ।"

"आपके जीवन की प्रसन्नता ही मेरी अनुमति है प्राणनाथ !

आपकी आत्मा को कष्ट देकर मैं अपना आराम और अधिकार नहीं चाहती।" शशिप्रभा ने सरलतापूर्वक कहा।

"तो तुम ही पत्र लिखकर बुलाओ मिस मेरी को शशि!" राजा सुमेरसिंह बोले।

"परन्तु मेरा तो उनसे कोई परिचय नहीं है।" शशिप्रभा ने कहा।

"परिचय क्यों नहीं है? जिस व्यक्ति का मुझसे परिचय है उसका मेरी शशि से परिचय न हो यह नितान्त असम्भव है।" भावुकता में भरकर राजा सुमेरसिंह बोले।

शशिप्रभा ने मिस मेरी को पत्र लिखा और उसे भारत बुलाया और केवल मात्र बुलाया ही नहीं उमा! राजा सुमेरसिंह और मिस मेरी का पाणिग्रहण भी कराया।" आचार्यजी ने कहा।

"अरे सच! तो राजा सुमेरसिंह ने मिस मेरी से भी विवाह कर लिया। यह आपने नई बात बतलाई है शशि के जीवन की। मेरा सम्पर्क शशि के विवाह के पश्चात् उससे बिलकुल ही टूट गया। मुझे उसका कुछ पता ही नहीं रहा और सम्भवतः उसे भी मेरा कुछ पता नहीं रहा होगा।" उमादेवी बोली।

"बिलकुल यही बात है उमा! परन्तु तुम्हारा नाम मैंने अक्सर शशि के सम्मुख लिया है और एक बार मुझे अब स्मरण हो रहा है कि शशि ने भी यह कहा था, 'मेरी भी एक सहेली का नाम उमा था। वह भी बड़ी मेधावी और चतुर लड़की थी।' परन्तु मैं शशि के उस वाक्य का सम्बन्ध उस समय तुमसे न जोड़ सका क्योंकि तुम्हारे पहले सम्पर्क के विषय में मुझे किंचित मात्र भी ज्ञान नहीं था।

तो इस प्रकार मिस मेरी भी भारत में आगईं और उनके लिए एक पृथक महल की व्यवस्था रियासत में की गई। उनकी पूजा के लिए एक गिर्जा बनवाया गया।

यह कार्य सब बड़ी सुगमतापूर्वक सफल हो गया। राजा सुमेरसिंह के जीवन में उठने वाले तूफान को शशिप्रभा ने बड़ी सावधानी से अपने आँचल में समेट लिया। राजा सुमेरसिंह के हृदय की पीड़ा को अपने हृदय में सुरक्षित कर लिया। उनके मस्तिष्क का भार हल्का कर दिया।

राजा सुमेरसिंह के इस विवाह ने जहाँ उन्हें मानसिक और हार्दिक शान्ति प्रदान की वहाँ यह बात एक इतनी बड़ी बात का कारण बन गई कि जिसने राजा सुमेरसिंह के जीवन में एक बहुत बड़ी हलचल पैदा कर दी।

बहादुरसिंह किसी ऐसी बात की प्रतीक्षा में था कि जिसे लेकर वह उन्हें बिरादरी में बदनाम कर सके। इस कार्य को लेकर बहादुरसिंह ने पूरी बिरादरी-भर में एक तूफान खड़ा कर दिया।"

"वह कैसा तूफान?" आश्चर्यचकित-सी होकर उमादेवी ने पूछा।

"उस तूफान की भी बड़ी रोचक कहानी है उमा! राजा सुमेरसिंह ने इस तूफान को मुसकराकर ही अपने सीने पर सँभाला।

हमारा राष्ट्र जातिगत दलदल में आज भी कुछ कम फँसा हुआ नहीं है परन्तु ज्ञान के सूर्य की प्रचण्ड गर्मी ने उस दलदल को आजकल बहुत-कुछ सुखा दिया है और मुझे विश्वास है कि जो रही-सही दलदल है वह भी कुछ दिनों में सूख जाएगी।

उन दिनों, जिस समय की मैं यह कहानी सुना रहा हूँ, जातीयता के संकुचित विचार राष्ट्र में बुरी तरह फैले हुए थे। इस विचार ने पूरे राष्ट्र को खंड-खंड करके अशक्त किया हुआ था।

जातिगत शासन इन दिनों इतना कठोर था कि उसके सम्मुख बड़े-से-बड़े आदमी को भी सिर झुकाना होता था।

परन्तु राजा सुमेरसिंह ने उसके सम्मुख सिर नहीं झुकाया।"

"परन्तु उन पर सिर झुकाने या ऊपर करने की नौबत कैसे आई ?" उमादेवी ने पूछा।

उमादेवी के इस भोले प्रश्न पर मुझे भी हँसी आ गई। मुझे हँसते देखकर उमादेवी कुछ लजा-सी गईं। वह समझ गईं कि उन्होंने अवश्य कोई बचपने का प्रश्न कर दिया।

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "सचमुच उमा ! कभी-कभी तुम बच्चों जैसे प्रश्न कर जाती हो। यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे स्वभाव से परिचित न हो तो वह यही समझे कि तुम जैसी चतुर स्त्री ऐसा प्रश्न उसे बुद्धू बनाने के लिए पूछ रही है।

परन्तु मैं जानता हूँ कि तुम मुझे बुद्धू बनाने का प्रयास नहीं कर सकती। तुम्हारा शशिप्रभा के जीवन में प्रवेश का प्रवाह तुम्हारे विचार पर छा गया है।

राजा सुमेरसिंह का एक ईसाई लड़की मे विवाह करना उस समय का समाज सहन नहीं कर सकता था और यदि कर भी लेता तो बहादुरसिंह उसे करने नहीं दे सकता था। दबी ज्वाला को उकसाने में बहादुरसिंह बहुत निपुण था।

उन्हीं दिनों उनकी बिरादरी का वार्षिक सम्मेलन होने वाला था। जब तक राजा सुमेरसिंह के पिता, राजा साहब जीवित रहे, वही सर्वदा उसके प्रधान रहे। परन्तु इस बार बहादुरसिंह ने जाल रचकर अपने को उसका प्रधान घोषित करा लिया।

और जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस सभा में हुई वह यह थी कि सभा ने राजा सुमेरसिंह के एक म्लेच्छ कन्या से विवाह की निन्दा की और उन्हें दण्डित करने के लिए उन पर दस हजार रुपया जुर्माना किया गया।

यदि दस हजार रुपया जुर्माना वह न दें और सभा के सम्मुख अपनी भूल की लिखित क्षमा-याचना न करेंगे, उन्हें जातिच्युत कर दिया जाय

और ऊँची बिरादरी वाले उनके साथ खाने-पीने और विवाह इत्यादि के सम्बन्ध न रखें।

इस प्रस्ताव का प्रभाव राजा सुमेरसिंह के पारिवारिक जीवन पर बहुत घातक पड़ा। राजा साहब जानते थे कि उसका क्या परिणाम होगा, परन्तु उन्होंने बिरादरी की इस सभा के सम्मुख क्षमा याचना नहीं की।

उनकी आत्मा कहती थी कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया। फिर वह क्षमा याचना किसी के सम्मुख क्यों करें ?"

इतना कहकर आचार्यजी उठकर खड़े होते हुए बोले, "बस उमा! आज इससे आगे गाड़ी नहीं चलेगी।" कल प्रातःकाल जब इधर घूमने आऊँगा तो शशिप्रभा की कथा को आगे बढ़ायेंगे।

तुम देखोगी उमा कि शशिप्रभा ने अपने पति के लिए जितना बड़ा त्याग किया उतना साधारण स्त्री नहीं कर सकती। परन्तु मिस मेरी का भी जब तुम चरित्र देखोगी तो वाह-वाह कर उठोगी।

वह भी हीरा स्त्री निकली।"

इतना कहकर आचार्यजी चल दिये।

इस समय मेरी और उमादेवी की दशा उन प्रेमियों के जैसी थी जो सिनेमा हाल से दो प्रेमियों का प्रेम चित्र में उनके पारस्परिक त्याग की तस्वीर देखकर बाहर निकलते हैं।

मेरी दृष्टि में इस समय शशिप्रभा का चरित्र महान् आकर्षण के साथ उपस्थित था। वह वास्तव में श्रद्धा की पात्री थी जिसने अपने पति की प्रसन्नता के लिए अपना एकाधिकार उनके चरणों पर बिछा दिया।

मैं उमादेवी से बोला, "उमादेवी, तुम्हारी सहेली का चरित्र वास्तव में आदर्श चरित्र है। वह देवी महान् है।"

[१४]

दूसरे दिन प्रातःकाल आचार्यजी घूमने के पश्चात् हमारे मकान पर आये तो मैं सतीश को साथ लेकर घूमने चला गया था। उमादेवी अपने कमरे में बैठी दैनिक पत्र पढ़ रही थीं।

आचार्यजी ने कमरे में प्रवेश किया तो उमादेवी बोलीं, "केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की प्रस्तावित हड़ताल को राष्ट्रपति ने अध्यादेश जारी करके गैरकानूनी घोषित कर दिया।

अब देखना है कि ट्रेड यूनियन के नेता राजनीतिक पार्टियों के भुलावों में आकर मूर्ख बनते हैं या समझदारी से काम लेकर कोई ऐसा मार्ग खोज निकालते हैं जिससे उनके सम्मान की भी रक्षा हो सके और सरकार के साथ व्यर्थ टकराव की स्थिति भी पैदा न हो।"

आचार्यजी सामने कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "मैं सब पढ़ चुका हूँ उमादेवी! परन्तु इस प्रकार के अध्यादेश का जारी होना देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है। यूँ समर्थन मैं इस हड़ताल का भी नहीं कर सकता; क्योंकि सरकारी कर्मचारियों को विचारना चाहिए कि उनकी आर्थिक दशा देश की जनता की अपेक्षा कहीं अच्छी है। उनकी दशा देश की पिच्चानवे प्रतिशत जनता के लिए हसद की वस्तु है। आमलोग तरसते हैं उन नौकरियों को पाने के लिए।

जनता में इस हड़ताल के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है, बल्कि क्षोभ ही है। जनता नहीं चाहती कि उन्हें सुविधाएँ देने के लिए जनता पर टैक्स लगाये जायें। जनता वैसे ही टैक्सों के बोझ से पिसी जा रही है। वह एक अरब रुपया वार्षिक का और बोझा अपने सिर पर उठाने के लिए उद्यत नहीं है।

यदि सरकार आँखें बन्द करके कर्मचारियों की इन माँगों को मान ले और उसकी पूर्ति के लिए जनता से टैक्स वसूल करे तो निश्चित रूप से देश की जनता में विद्रोह पैदा हो जायगा।

ऐसी स्थिति में अध्यादेश जारी करने के अतिरिक्त राष्ट्रपति के पास और कोई चारा नहीं था।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "और कोई चारा नहीं था, आपकी यह बात मैं नहीं मानती। यह अध्यादेश तो आप ऐसे समझिये कि जैसे युद्ध रोकने के लिए ऐटम बम गिरा देना। यह ठीक है कि इससे हड़ताल का ढाँचा छिन्न-भिन्न हो जायगा परन्तु हानि दूसरी दिशा में भी कुछ कम नहीं होगी। जनता को भी कठिनाई का सामना करना होगा और भविष्य में सरकारी कर्मचारियों और जनता के बीच तनाव पैदा हो जायगा।

केन्द्रीय कर्मचारी हमारे अपने ही लोग हैं। उन्हें प्यार और मुहब्बत से समझाया जाता तो कोई कारण नहीं था कि कुछ-न-कुछ हल न निकल आता।"

इतना कहकर उमादेवी हँस पड़ीं और फिर बोलीं, "चलो हो गया, यह तो जो कुछ होना था। सरकार के पास पुलिस है, फौज है, शक्ति है और शक्ति का अभिमान है। वह तो अध्यादेश जारी करती ही। अब देखना यह है कि केन्द्रीय कर्मचारियों के नेता किस प्रकार अपने सम्मान की रक्षा करते हैं। किस प्रकार इस महान् आपत्ति को कर्मचारियों के सिरों पर टालते हैं।

या अपनी लीडरी की सनक में राजनीतिक पार्टियों के संकेत पर इन निरीह कर्मचारियों को अध्यादेश की मिट्टी में झोंक देते हैं।"

आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "ये लोग यही करेंगे।"

"परन्तु करना यह नहीं चाहिए।" उमादेवी बोलीं।

"फिर क्या करना चाहिए?" आचार्यजी ने पूछा।

"इन्हें घोषणा करनी चाहिए कि राष्ट्रपति के अध्यादेश से देश की बदली हुई परिस्थिति में हम अपनी हड़ताल का नोटिस वापस लेते हैं परन्तु सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि उसने

हमारी माँगों की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया तो अध्यादेश की अवधि पूर्ण होने पर हम लोग फिर हड़ताल का नोटिस देंगे।"

इन लोगों को इस समय यह ऐलान करके हड़ताल वापस ले लेनी चाहिए। इससे सरकार के सम्मुख भावी हड़ताल का भय भी बना रहेगा और कर्मचारियों को कोई हानि भी न होगी। साथ ही जनता पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "तुमने ठीक सोचा उमादेवी ! इस समय कर्मचारी यूनियन के नेताओं के पास अपनी मान-रक्षा और बराबर सरकार के दिल पर हड़ताल का भय जमाये रखने का एकमात्र यही उपाय है। इस समय यदि इन्होंने सरकार से संघर्ष लिया तो इनकी कमर टूट जायेगी। इनकी शक्ति एक लम्बे काल के लिए छिन्न-भिन्न हो जायेगी और फिर बहुत दिन तक हड़ताल का नाम लेने का भी ये साहस नहीं कर सकेंगे।"

तभी चारों ओर दृष्टि डालकर आचार्यजी ने पूछा, "यतीन्द्र भैया कहाँ हैं ? सतीश भी दिखलाई नहीं दे रहा कहीं।"

सतीश को साथ लेकर घूमने चले गये हैं सुबह-ही-सुबह। मुझे पता भी नहीं चला कि वे कब उठकर चले गये। अभी आते ही होंगे घूमकर।

रात्रि को मुझे कुछ देर से नींद आई। मैं बहुत देर तक शशि के विषय में सोचती रही। मैं सोचती रही कि बहादुरसिंह की इस काली करतूत से राजा सुमेरसिंह की मान-मर्यादा को बहुत बड़ी ठेस लगी होगी। उनकी बिरादरी में उनका स्थान गिर जाने से उन्हें घोर विपत्ति का सामना करना पड़ा होगा।"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "मेरे पास इस समाचार के दो पत्र एक ही दिन आये। इनमें एक बहादुरसिंह का था और दूसरा राजा सुमेरसिंह का। दोनों पत्र एक साथ डाकिये ने लाकर दिये।

राजा सुमेरसिंह ने इस घटना का बड़े मार्मिक और दुःखद शब्दों में वर्णन किया था। वे दोनों पत्र मेरे पास आज भी सुरक्षित हैं।"

और इतना कहकर आचार्यजी ने अपनी जेब से वे दोनों पत्र निकाले और उनमें से पहले राजा सुमेरसिंह का पत्र पढ़ना आरम्भ किया। उसमें लिखा था :

"प्रिय भाई नरेन्द्र !

आज इस पत्र में तुम्हें मैं वह दुःखद समाचार भेज रहा हूँ कि जिसने मुझे मेरी तमाम बिरादरी में कलंकी घोषित कर दिया है। बिरादरी में मेरे स्तर को गिरा दिया है।

मेरे मिस मेरी से विवाह करने की बात को लेकर बहादुरसिंह ने तूफान खड़ा कर डाला। पूरी बिरादरी में यह चर्चा फैला दी कि मैंने म्लेक्ष लड़की के साथ विवाह करके पूरी बिरादरी की नाक काट ली।

फलस्वरूप बिरादरी के मूर्ख लोगों ने मेरा बिरादरी से बहिष्कार कर दिया। मुझे जातिच्युत करके यह घोषणा कर दी गई कि हमारे परिवार में बिरादरी का कोई खान-पान और रोटी-बेटी का सम्बन्ध न रहे।

इस प्रकार मैंने अपने परिवार को अपने कुकृत्य से कलंकित करके अपने पुर्खों की मान-मर्यादा को भारी धक्का पहुँचाया है।

मेरा मन लज्जा से बहुत खिन्न हो रहा है। मुझे कोई मार्ग सूझ नहीं पड़ रहा कि इस आपत्ति का किस प्रकार सामना करूँ ? इस आपत्ति काल में मैं कैसे अपने सम्मान की रक्षा करूँ ?

मुझे धैर्य बँधाने को इस समय यदि तुम्हारी भाभी शशि मेरे पास न होतीं तो निश्चित रूप से पागल हो जाता। मेरा मन बहुत दुःखी है।

बहादुरसिंह बहुत चालाक, मक्कार और बदमाश व्यक्ति निकला। मैं इससे स्वप्न में भी कभी ऐसी आशा नहीं रखता था। इसने मेरे सब उपकारों पर पानी फेर दिया।

मैंने इस पर बहुत बड़े-बड़े उपकार किये हैं नरेन्द्र ! जिनकी तुम्हें कभी हवा भी नहीं लगने दी। तुमसे कहता तो तुम सम्भवतः यही कहते कि इस निकम्मे व्यक्ति के साथ ऐसी सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है।

आज तुम्हें बतलाता हूँ कि जब इसका विलायत जाने का समय आया तो इसके पास विलायत तक जाने के लिए किराया भी नहीं था। यह मेरे पास आकर गिड़गिड़ाया तो मुझे दया आ गई। मैंने सोचा कि यदि हमारी जाति के एक नौजवान का भविष्य मेरे सहयोग से बन जाये तो अच्छी बात है। इसलिए मैंने इसे अपने छोटे भाई के समान सहायता दी।

विलायत में यह जितने दिन भी रहा इसका आधा खर्चा मैं सहन करता रहा और तुम सच जानो कि इसकी परीक्षा की फीस भी मैं न भरता तो यह उसमें भी प्रवेश पाने से वंचित रह जाता। मैं था इसका हमजोली ही, परन्तु एक भाई के समान मैंने इसका साथ निभाया। इसकी सब मक्कारियों और दुराचारों को सहन किया और कभी किसी से एक शब्द भी इसके विषय में नहीं कहा।

भारत लौटने पर इसने शशि की माताजी के कान मेरे विरुद्ध किस प्रकार भरे, यह तुम पर विदित ही हो चुका है। तुम सोचो कि क्या इसे ऐसा आचरण मेरे साथ करना चाहिए था ?

मैंने उसे भी मुसकराकर ही सहन किया और एक शब्द भी इससे कभी नहीं कहा। मैंने अपना मित्रता का नाता ही नहीं तोड़ा और उसी प्रकार पारस्परिक स्नेह बनाये रहा जैसा पहले था। इसे अपने विवाह में भी आमन्त्रित किया।

परन्तु अब जो कांड इसने रचा है इसके पश्चात् मेरा बहादुरसिंह से सर्वदा के लिए नाता टूट गया। इसने मुझ पर ही नहीं, मेरे परिवार की मान-मर्यादा पर हाथ साफ किया है। अब इसे कदापि क्षमा नहीं किया जा सकता।

इस कठिन समय में मुझे विश्वास है कि तुम मेरी सहायता के लिए आओगे और मुझे अपनी नेक सलाह दोगे कि मुझे इस समय क्या करना चाहिए।

तुम्हारी भाभी शशिप्रभा का तुम्हें स्नेह। वह तुम्हें याद कर रही हैं।

तुम्हारा भाई
सुमेरसिंह"

पत्र सुनकर उमा भावुकतापूर्ण आवेश में बोलीं, "बहादुरसिंह बहुत नीच प्रकृति का व्यक्ति मालूम देता है।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "लो, अब बहादुरसिंह का भी पत्र सुन लो : कहकर आचार्यजी ने दूसरा पत्र पढ़ना आरम्भ किया :

"भाई नरेन्द्र !

आज जीवन में इतने दिन पश्चात् मुझे यह अवसर मिला है कि मैं सीना तानकर तुम्हें यह पत्र लिख सकूँ और कह सकूँ कि तनिक अपने सुमेरसिंह से पूछकर देखिये कि काठ का उल्लू वह है या मैं। मुझे वह आज तक अपने पैसे के झूले पर झुलाता रहा है, ललचाता रहा है, तरसाता रहा है और मेरा स्वांग देखता रहा है। मैं भी स्वांग बनता रहा हूँ और सोचता रहा हूँ कि कभी तो मेरी भी गुड्डी आसमान पर चढ़ेगी ही। कभी तो मुझे अवसर मिलेगा ही जब इसे मेरे सम्मुख झुककर नतमस्तक होना पड़ेगा।

सुमेरसिंह के पिता ने अपनी चालाकी से, बिरादरी की अनेकों जायदादें हड़पकर अपनी रियासत का विस्तार कर लिया। हम लोगों को उन्होंने कितना सताया है, यह तुम्हें बतलाया नहीं जा सकता। मरता-मरता भी कम्बख्त बाँकीपुर की रियासत को हड़प ही गया।

जिस किसी ने भी उसके सामने सिर उठाने का प्रयत्न किया उसीको उसने कुचल दिया। पूरी बिरादरी में केवल हमारी ही एक छोटी-सी रियासत बची है, वरना उसने सरकार से मिलकर सब पर पानी फिरवा दिया।

बिरादरी के लोगों के दिलों में इस परिवार के प्रति बड़ा रोष है। इसीलिए उसके मरते ही अखिल भारतीय जातीय सभा में राजा सुमेर-सिंह को बिरादरी से च्युत कर दिया गया। उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया गया और ऊँची जाति के लोगों के साथ उसके विवाह-सम्बन्ध पर भी रोक लगा दी गई। अब सहसपुर का परिवार हमारी बिरादरी में दस्सों का परिवार गिना जायगा। बीसे लोग इनके साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे।

पता नहीं तुम्हारा क्या मत होगा, परन्तु मेरा तो यही मत है कि मिस मेरी के साथ शशिप्रभा जैसी पतिव्रता भारतीय नारी के होते हुए राजा सुमेरसिंह का विवाह कर लेना एक अपमानजनक कार्य है। मैं उसके इस नीच कार्य का कदापि समर्थन नहीं कर सकता।

शशि और शशि की माताजी को मैंने इस रहस्य की विवाह से पूर्व ही सूचना दे दी थी परन्तु दुर्भाग्य था शशि का कि उसकी माताजी अपने पूर्व निश्चय पर ही दृढ़ रहीं, और यह सम्बन्ध स्थापित हो गया।

शशिप्रभा पर सुमेरसिंह के अत्याचार से जो आपत्ति का पर्वत गिरा है, उसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। मेरे मन में उसके प्रति तो क्रोध इसलिए पैदा हो गया था कि उसने एक समझदार लड़की होते हुए मेरे समझाने पर भी, उस विवाह का विरोध नहीं किया ; वह उसकी इस आपत्ति को देखकर काफूर हो गया।

मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं शशि को जीवन में आज भी हर प्रकार का सहयोग देने को उद्यत हूँ। मैंने शशि को अपने जीवन में जो स्थान दिया था, वह आज भी रिक्त है।

एक समझदार साथी के नाते, एक समाज-सुधारक राष्ट्रीय जन-नेता के नाते, यह पत्र मैं तुम्हें लिख रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम शशि के जीवन में आई हुई इस आपत्ति में उसकी सहायता करने से मुख नहीं मोड़ोगे और अपने सहपाठी मित्र बहादुरसिंह के वास्तविक रूप को समझने में भूल नहीं करोगे।

मैं किसी स्वार्थ-भावना से प्रेरित होकर यह पत्र तुम्हें नहीं लिख रहा हूँ। एक अबला की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। उसीके लिए तुम्हें आमन्त्रित कर रहा हूँ।

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में,

तुम्हारा

बहादुरसिंह"

उमादेवी पत्र सुनकर दाँतों के नीचे उँगली दबाकर रह गई। उनके मुख से निकला, "महा दानव प्रवृत्तियों वाला कितना कुटिल व्यक्ति है यह!" परन्तु इतना कहकर उमादेवी तुरन्त खिलखिलाकर हँस पड़ीं। कुछ देर हँसती ही रहीं और फिर आचार्यजी के चेहरे पर नेत्र पसारकर बोलीं, "आपने विलायत से लौटने पर इस व्यक्ति को जिस उपाधि से विभूषित किया था, यह सचमुच उसका अधिकारी है।"

आचार्यजी ने पूछा, "कौन-सी उपाधि ?"

उमादेवी बोलीं, "'काठ का उल्लू'! यह सचमुच काठ का उल्लू ही है। इस व्यक्ति का मस्तिष्क भी सूखे काठ के समान है। इसके मस्तिष्क में विचार का नितान्त अभाव है। यह किसी भी बात की तह में जाना नहीं जानता। स्वार्थवश ऊपरी वस्तु पर ही यह मँडराने लगता है। इसीलिए इसका चरित्र घृणा की अपेक्षा कहीं अधिक उपहास की वस्तु है।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "इसीलिए इसके हर नीच कार्य के पश्चात् राजा सुमेरसिंह इसे क्षमा करते हैं।

परन्तु इस बार इसने बहुत गम्भीर अपराध किया। इसे ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए था।"

ये बातें चल रही थीं कि तभी मैं और सतीश घूमकर लौट आये।

मैं आचार्यजी को प्रणाम करके बोला, "क्षमा करना आचार्यजी, मुझे लौटने में तनिक देर हो गई। यूँ ही बाग में घूमने निकल गया था। वहाँ कुछ लोगों में सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल को लेकर बातें चल रही थीं। उन्हें मैं भी सुनने लगा।"

"आम लोगों का मत आपको किस दिशा में प्रतीत हुआ?" आचार्यजी ने मुझसे पूछा।

मैंने कहा, "हड़ताल के पक्ष में किसी का मत नहीं है। आम लोग हड़ताल के विरुद्ध हैं। इस समय कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की देश-व्यापी हड़ताल के पक्ष में नहीं है कि जिससे जन-जीवन के सब काम-काज एकदम ठप पड़ जायें।"

"आपका विचार ठीक है यतीन्द्र बाबू! इस हड़ताल को देश की जनता का समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता और यही कारण है कि यदि यह हुई तो सफल भी नहीं होगी।"

महाराजिन ने चाय तैयार कर ली थी। मेरे और सतीश के लौटने की प्रतीक्षा थी।

सबने चाय पी और फिर आचार्यजी खड़े होकर वे दोनों पत्र मुझे देते हुए बोले, "मैं चल रहा हूँ यतीन्द्र बाबू। अब संध्या को भेंट होगी। तब तक आप इन्हें पढ़ लें और उमा से इसके विषय में चर्चा कर लें। इससे आगे की कथा में आपकी रोचकता बढ़ जायेगी।"

दोनों पत्र मेरे हाथ में देकर आचार्यजी ने विदा ली।

[१५]

आचार्यजी के चले जाने पर मैंने वे दोनों पत्र पढ़े और उन्हें पढ़कर उमादेवी से बोला, "अब तो संकट पैदा कर दिया बहादुरसिंह ने राजा सुमेरसिंह के मार्ग में। ज्यातिच्युत होने से उन्हें गम्भीर धक्का लगा होगा।

परन्तु बहादुरसिंह का शेष पत्र उपहासपूर्ण ही है। यह व्यक्ति बहुत उथले मस्तिष्क का है। संसार इसे इसकी स्वार्थसिद्धि के लिए हर समय उतावला खड़ा दिखलाई देता है। शशि जैसी देवी के विषय में यह मूर्ख देखो कैसी कल्पना कर रहा है!

यह आज भी बाँकीपुर की रियासत का मालिक बनने का स्वप्न अपने मस्तिष्क में लिए बैठा है।

मेरी बात सुनकर उमादेवी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। वह बोलीं, "बात वास्तव में यही है। इसलिए इस धूर्त के हृदय में शशि के प्रति करुणा उमड़ रही है। इसीलिए यह राजा सुमेरसिंह और शशि के सम्बन्ध-विच्छेद का स्वप्न देख रहा है।"

उमादेवी का स्वास्थ्य अब कुछ और ठीक हो चला था। कई दिन से बदन ज्वर-मुक्त होने पर कुछ चलने-फिरने लगा था।

आज पूरे तीन माह पश्चात् उन्होंने गर्म पानी से स्नान किया तो बोलीं, "शरीर आज बहुत हल्का-हल्का प्रतीत हो रहा है।"

मैं मुसकराकर बोला, "भारीपन तो बीमारी ने सब निकाल ही लिया शरीर में से। अब रह ही क्या गया है? चार हड्डियों का ढाँचा। यह भी हल्का न होता तो और क्या होगा?"

उमादेवी मेरी बात पर खूब हँसीं। आज बहुत प्रसन्न थीं वह। बोलीं, "सचमुच बदन की मांसलता बिलकुल ही नष्ट हो गई। यह भी अच्छा ही हुआ। जब मरूँगी तो आपको अधिक बोझा नहीं ढोना पड़ेगा।"

मुझे उमादेवी के ये शब्द भले नहीं लगे। मैंने दुखी मन से स्नेह के साथ उमादेवी का हाथ अपने हाथ में लेकर धीरे से कहा, "उमादेवी ! ऐसे अशुभ शब्द व्यर्थ मुख से न निकाला करो। मेरे दिल पर इस वाक्य से चोट लगती है।"

उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "आपके हृदय को मेरे वाक्य से आघात पहुँचा, इसका मुझे हार्दिक खेद है। भविष्य में फिर कभी ऐसी बात मेरी जबान से नहीं निकलेगी। आप विश्वास रखें।"

संध्या को आचार्यजी अपने निश्चित समय पर पधारे। हम लोग उस समय उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

आचार्यजी ने बैठते ही अपनी बगल में लगा दैनिक पत्रों का पुलन्दा उमादेवी के हाथों में देते हुए कहा, "उमादेवी ! यह देखो, हमारे सब साथियों ने अपने-अपने प्रदेशों में हमारे निश्चित कार्यक्रम के अनुसार काम करना प्रारम्भ कर दिया।"

उमादेवी ने बिहार, पंजाब, बंगाल, राजस्थान, मद्रास, मध्य प्रदेश इत्यादि के दैनिक पत्रों पर दृष्टि डाली तो उनका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। वह मुसकराकर बोलीं, "हमारे साथियों ने तो वास्तव में कमाल कर दिया। एक सप्ताह में इतनी सभाएँ भी कर डालीं और हम लोग अभी चुपचाप ही बैठे हैं।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी बोले, "तुम्हारी बीमारी के कारण ही हम लोग साथियों से पिछड़ गये उमादेवी ! तुम तनिक ठीक हो लो, कार्य यहाँ भी धीमी गति से नहीं होगा।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी उत्साहपूर्वक बोलीं, "मैं अब बीमार कैसे दिखलाई दे रही हूँ आपको ? आप कार्य प्रारम्भ कीजिये, तो देखेंगे कि उमा पीछे रहने वाली नहीं है।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी हँसकर बोले, "यह मैं जानता हूँ कि उमा पीछे रहने वाली नहीं है, इसीसे तो डर रहा हूँ।

कहीं शक्ति से अधिक दौड़-भाग करके तुम फिर पलंग पर लेट गईं तो यतीन्द्र भैया के गले में फिर मुसीबत फँस जायेगी।

इतने लम्बे काल से मैं यतीन्द्र भैया की परेशानियों का कारण बनता चला आ रहा हूँ। अब वृद्धावस्था में इन्हें अधिक कष्ट नहीं दूँगा।"

आचार्यजी की बात सुनकर मुझे हँसी आ गई और हँसता हुआ ही बोला, "मेरी परेशानियों के कारण आप अपना काम न रोके रहें आचार्यजी! परन्तु उमादेवी को यह सच है कि मैं अब पहले जैसी भाग-दौड़ करने की अनुमति नहीं दूँगा।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी बोले, "एक बार काम पर जुट जाने के पश्चात् उमा अनुमति की चिन्ता भुला देती है और सच बात यह है कि मेरे सिर पर भी काम का भूत इतनी बुरी तरह सवार हो जाता है कि मैं सब-कुछ भूल जाता हूँ।

अपनी इस भूल का शिकार अब मैं उमा को नहीं बनने दूँगा। आप निश्चिन्त रहें।"

इसके पश्चात् बातों की दिशा राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा की ओर बदल गई।

मैंने वे दोनों पत्र, जो आचार्यजी प्रातःकाल दे गये थे, उन्हें लौटाकर पूछा, "इन पत्रों को पाने के पश्चात् आपने क्या किया?"

आचार्यजी बोले, "मैं तुरन्त सहसपुर पहुँचा और राजा सुमेरसिंह को धैर्य बँधाते हुए बोला, आप इस घटना की किञ्चित् मात्र भी चिन्ता न करें। यह सत्य है कि इस समय आपको यह घटना अपने परिवार की मान-मर्यादा पर कुठाराघात-सी प्रतीत हो रही है परन्तु एक दिन वह भी आयेगा जब देश का प्रगतिशील समाज तुम्हारे इस कार्य की सराहना करेगा और शशिप्रभा के त्याग को आदर्श-स्वरूप ग्रहण करेगा।

देश का दुर्भाग्य है कि हमारा समाज जातिगत रस्सियों में जकड़ा हुआ है। ये बन्धन जो प्रारम्भ में समाज की कुरीतियों पर अंकुश-स्वरूप आयोजित किये गये थे, आज भले कामों पर अंकुश बनते जा रहे हैं।

आपकी बिरादरी की सभा ने श्रीमती मेरी जैसी सुशिक्षित और सभ्य महिला को 'म्लेक्ष' शब्द से सम्बोधित किया, यह हार्दिक खेद का विषय है। उस विदेशी महिला ने यह सब सुना होगा तो उसने हमारे समाज के प्रति न जाने क्या धारणा बनायी होगी।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी श्रीमती मेरी वहाँ आ गईं। मैंने खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया।

वह मुसकराकर बोलीं, "आचार्यजी पधारे हैं। राजाजी कल से आपकी राह देख रहे थे।" और फिर बड़े मार्मिक शब्दों में बोलीं, "देखिये आचार्यजी ! मैं भी कितनी अभागी स्त्री निकली।"

राजा साहब से सम्पर्क बढ़ा और पारस्परिक प्रेम में बदल गया। मैंने हृदय से इन्हें वर लिया और इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम मुझे प्रदान किया।

यह भारत चले आये और अपने पिताजी की आज्ञा पालन कर श्रीमती शशिप्रभा से इनका विवाह हो गया।

यह सूचना वज्राघात के समान मेरे पास पहुँची तो मेरा सिर चकरा गया। मैं अचेत-सी होकर सोफ़े पर गिर पड़ी। मेरे सिर में अचानक भयानक दर्द हो गया।

पिताजी ने मेरी यह दशा देखकर डाक्टर को बुलाया।

संध्या तक मेरी दशा कुछ-कुछ ठीक हुई परन्तु मन बहुत अशान्त था।

पिताजी ने बहुत समझाया। मुझे तुरन्त अपना विवाह करने की राय दी कि जिससे पिछली स्मृतियाँ जीवन से हट जायें। परन्तु मैं यह सब-कुछ नहीं कर सकी।

मैं राजा साहब के स्वभाव और इनके विवाह पर गम्भीरतापूर्वक विचार करती रही। बहुत सोचा, परन्तु मेरा मन यह कह ही नहीं सका कि राजा साहब ने मुझे धोखा दिया, या मेरा निरादर किया।

इसी सोच-विचार में पूरा एक वर्ष व्यतीत हो गया। इसी बीच इनके बहुत-से पत्र आये और मैंने उनके उत्तर दिए। उनमें शशिप्रभा के विषय में विस्तार के साथ राजा साहब ने लिखा था। उनकी सुशील प्रवृत्ति और चतुर बुद्धि की प्रशंसा की थी।

इस एक वर्ष में पिताजी ने विवाह के कई प्रस्ताव मेरे सम्मुख रखे परन्तु मेरा मन एक को भी स्वीकार न कर सका। मेरे हृदय में न जाने राजा साहब ने कैसा स्थान बना लिया था कि यह उसे छोड़ ही नहीं रहे थे।

अन्त में मैंने यही निर्णय किया कि यदि मुझे जीवन में राजा साहब का सामीप्य मिल सके तो मैं आजीवन अविवाहित रहकर भी जीवन काट सकती हूँ।

मैं इसी विचार पर अपने को तोल रही थी कि अचानक मुझे शशि-प्रभा का पत्र मिला।

उस पत्र को पढ़कर मुझे जितनी प्रसन्नता हुई, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती। मैंने शशि बहन को महान् श्रद्धा की दृष्टि से देखा।

उस दिन मेरी प्रसन्नता को देखकर पिताजी को भी प्रसन्नता हुई। आप जानते ही हैं कि पिताजी मुझे कितना स्नेह करते थे। मुझे पास बिठलाए बिना वह कभी चाय भी नहीं पीते थे।

इस एक वर्ष की मेरी उदासीनता का प्रभाव जितना मेरे स्वास्थ्य पर पड़ा था उससे कहीं अधिक पिताजी के स्वास्थ्य पर पड़ा था। वह सहर्ष बोले, "मिस मेरी! आखिर परमात्मा ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ही ली।

मैं जानता हूँ कि तुम अब भारत जाओगी। जाओ, मैं तुम्हें मना

नहीं करता परन्तु ध्यान रखना कि तुम्हारे द्वारा कभी जीवन में कोई ऐसा कार्य न हो कि जिससे शशिप्रभा का मन दुखी या खिन्न हो। तुम्हारे कारण उसे कभी कोई कष्ट नहीं होनी चाहिए।"

मैंने पिताजी को आश्वासन दिया, "आपकी आज्ञा का प्राण रहते पालन करूँगी पिताजी!"

मैं भारत आई तो शशि ने मुझे अपनी बहन के रूप में ग्रहण किया और यहाँ तक उदारता बरती कि अपना आधा सौभाग्य भी मुझे भेंट कर दिया।

वह दिन मेरे जीवन में कभी विस्मरण नहीं हो सकता जब शशि ने स्वयं मेरे और राजा साहब के गलों में पुष्प-मालाएँ डालकर हमारा पाणिग्रहण कराया था। आप सच जानिए कि मुझे उस दिन स्वर्गिक आनन्द की प्राप्ति हुई।

परन्तु मुझे पता नहीं था कि मेरा वह स्वर्गिक आनन्द राजा साहब पर इतनी महान् आपत्ति का पहाड़ गिरा देगा। मैं आपसे सत्य कह रही हूँ कि मुझे इस संकट का किंचित् मात्र भी ज्ञान होता तो मैं एक से लाख तक भी पाणिग्रहण के लिए तैयार न होती।"

कहते-कहते श्रीमती मेरी का गला रुँध गया। उनके नेत्र डबडबा आये और लज्जा से मस्तक नीचे झुक गया।

मेरा मन भी भारी हो उठा उनकी निराशा और खेद को देखकर परन्तु तुरन्त मैं सतर्क होकर बोला, "श्रीमती मेरी, आज आपके हृदय के भावना-प्रदेश में प्रवेश करने का मुझे अवसर मिला, यह मेरे सौभाग्य की बात है। परन्तु आपकी निराशा और खेद को देखकर कष्ट हुआ।

भारत में शिक्षा का अभाव है। उसी के परिणामस्वरूप यह घटना घटी है।

इस घटना से दुखी होने का मुझे कोई कारण दिखलाई नहीं दे रहा। आप एक विद्वान् महिला हैं। आप अपना जीवन अशिक्षित

समाज में शिक्षा-प्रसार के लिए लगाएँ तो कोई कारण नहीं कि अंध-विश्वासी लोगों की आत्मा को प्रकाश न मिले।

अपने मित्र सुमेरसिंह के लिए मुझे अपने जीवन का एक वर्ष इनकी बिरादरी में कार्य करना होगा। इस एक वर्ष में आप देखेंगी कि मैं पूरी बिरादरी की काया-पलट कर डालता हूँ।"

मेरी साहसपूर्ण बात सुनकर राजा सुमेरसिंह प्रसन्नता से उछल पड़े। उन्होंने खड़े होकर मेरी कौली भर ली और गद्‌गद स्वर में कहा, "मुझे आपसे यही आशा थी आचार्यजी !"

श्रीमती मेरी कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोलीं, "आचार्यजी ! आपने इस समय राजा साहब को शोक-सागर में डूबते-डूबते निकाल लिया।

आपको सामने देखकर मैं देख रही हूँ कि संसार से अभी नेकी विदा नहीं हो गई है। इस दुनियाँ में यदि बहादुरसिंह जैसे मित्र घाती रहते हैं तो आचार्यजी जैसे मित्र की अग्नि में कूदने वाले साथी भी मौजूद हैं।

उस दिन जब राजा साहब ने मुझे बहादुरसिंह के दुराचरण की सूचना दी थी तो मुझे लगा था कि यह भूमि छिन्न-भिन्न हो जायेगी। परन्तु अब विश्वास हो रहा है कि इस प्रलय को सँभालने वालों की भी कमी नहीं है।"

इतना कहकर श्रीमती मेरी ने अपने कृतज्ञतापूर्ण नेत्र मेरी आँखों में गड़ा दिए। उनकी नीली आँखों में मैंने आशा का समुद्र लहराता हुआ देखा।

अभी तक की बातों में मैं इतना लिप्त हो गया था कि मैं शशि भाभी के विषय में यह भी न पूछ पाया कि वह हैं कहाँ ?"

अब मुझे उनका वहाँ न होना कुछ खटका और मैंने राजा साहब से पूछा, "भाभी कहाँ हैं ? मैं बातों में लग गया और उनके विषय में पूछना ही याद नहीं रहा।"

शशि का जिक्र सामने आते ही बातों की दिशा बदल गई ।

राजा साहब मुस्कराकर बोले, "शशि ! अपने महल में हैं । हम लोग बातों में उलझकर भूल ही गए कि वह अकेली होंगी । चलिए, उधर ही चलें ।

आपके भतीजा हुआ है, परसों संध्या को चार बजे ।"

"अरे वाह भाई साहब ! इसके विषय में आपने पत्र में कोई संकेत ही नहीं दिया । बधाई है आपको !"

राजा सुमेरसिंह बोले, "इधर कुछ दिन से शशि की तबियत ठीक नहीं चल रही थी, इसलिए मैंने और मेरी ने उनसे इस दुर्घटना की चर्चा नहीं की । आप भी अभी जब तक वह पूर्ण स्वस्थ न हो जाएँ इस विषय को न छेड़ना ।"

"राजा साहब की इस बात से मैंने अनुमान लगाया कि वह इस बात से बहुत भयभीत हो उठे थे ।"

उमादेवी बोलीं, "भयभीत होने की तो यह बात ही थी आचार्यजी ! आजकल ऊँची जातियों में ये जातीय बन्धन बहुत ढीले पड़ गए हैं और अन्तर्जातीय विवाह भी काफी संख्या में होने लगे हैं । अब यह भी सम्भव दिखलाई दे रहा है कि भविष्य में एक दिन वह भी आ सकता है जब ये सब व्यर्थ के जातीय अवरोध समाप्त हो जाएँ । परन्तु वह समय ऐसा नहीं था । उन दिनों जातीय प्रतिबन्धों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया जाता था ।

बहादुरसिंह के इस कार्य ने राजा सुमेरसिंह को उनकी बिरादरी में एकदम नगण्य स्थिति में पटक दिया । इसका गम्भीर प्रभाव तो उनके मस्तिष्क पर होना ही था ।"

समय पर्याप्त हो चुका था । आचार्यजी खड़े होकर बोले, "अच्छा उमा, अब हम चलेंगे । कल सुबह तुम्हें बतलाएँगे कि हमने कैसे बहादुरसिंह का राजा सुमेरसिंह के विरुद्ध रचा हुआ जाल काटा और

एक वर्ष में ही राजा सुमेरसिंह को उनकी बिरादरी में सम्मानित व्यक्ति घोषित करा दिया।

राजा साहब मेरे उस कार्य की प्रशंसा आज भी जब कभी अवसर आता है, करने से नहीं चूकते।"

[१६]

भोजन के उपरान्त मैं और उमादेवी बहुत देर तक राजा सुमेरसिंह की स्थिति पर विचार करते रहे। हमारे देश का समाज किस प्रकार जातीयता का ग्रास बना हुआ है उस पर खेद प्रकट करते रहे और सोचते रहे कि समाज की इन कमज़ोरियों का धूर्त्त व्यक्ति किस प्रकार लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं।

बहादुरसिंह के चरित्र पर बातें करते-करते हम दोनों श्रीमती मेरी के चरित्र पर बातें करने लगे।

उमादेवी बोलीं, "जैसा कुछ अभी तक आचार्यजी की बातों से विदित हुआ, श्रीमती मेरी बहुत ही दृढ़ निश्चय वाली भावुक महिला हैं। उनका हृदय बहुत स्वच्छ और भावनाएँ बड़ी कोमल हैं।

उस समय उन्हें उसी बात का हार्दिक खेद था कि उन्होंने व्यर्थ राजा साहब से विवाह करके उन्हें और शशिप्रभा को संकट में डाल दिया। उनके विवाह के फलस्वरूप ही राजा साहब की मान-मर्यादा को इतनी ठेस लगी कि भविष्य में कुलीन घरानों के अन्दर उनके बच्चों के शादी-विवाह भी नहीं हो सकेंगे।

वह अपने दुर्भाग्य पर पछताईं।"

रात्रि को उन्हींके विषय में बातें करते-करते उमादेवी को नींद आ गई।

मैंने खड़ा होकर बाहर का दरवाजा देखा और फिर सतीश के कमरे की ओर दृष्टि गई तो वहाँ बत्ती जल रही थी। मैंने और निकट जाकर देखा, वह कुछ कार्य कर रहा था।

मैंने कमरे में प्रवेश किया तो वह मुस्कराकर बोला, "आज सोने में कुछ विलम्ब हो गया पिताजी ! आचार्यजी ने कुछ काम सौंप दिया था, वही पूरा किया है।

मैंने अपने साथियों में शास्त्रीजी के कार्य-क्रम की चर्चा की तो सब को बहुत पसन्द आया। मुझे सभी ने उस कार्य में योग देने का आश्वा-मन दिया है।"

मैं मुस्कराकर बोला, "अब तुम आचार्यजी के वास्तविक चेले बन गए। परन्तु इन कामों में फँसकर कहीं अपनी कक्षा के काम को न भूला बैठना।"

सतीश बोला, "वह काम मैं सबसे पहले समाप्त करता हूँ पिताजी ! उसे समाप्त करके ही तब किसी अन्य कार्य को हाथ लगाता हूँ।"

मैं प्रसन्न होकर बोला, "अच्छा अब सो जाओ। साढ़े ग्यारह बज चुके हैं। अधिक देर तक जगने से प्रातःकाल सवेरे उठने का कार्य-क्रम नष्ट हो जायगा।"

इतना कहकर मैं अपने कमरे में चला गया।

प्रातःकाल सोकर उठा तो क्या देखा कि आज उमादेवी मुझसे पहले ही उठ चुकी थीं और बाहर बागीचे में घूम रही थीं।

मुझे यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई और मैं भी सीधा उठकर उनके पास चला गया।

मुझे देखकर उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "देखिए आज मैं आपसे पहले ही उठ खड़ी हुई। आज अचानक मेरी आँखें खुल गईं। मैंने उठ कर देखा तो कुछ अँधेरा था। इसीलिए किसी को जगाया नहीं और यहाँ बागीचे में निकल आई।

देखिए आज हमारे गुलाबों की पंक्ति में कई नए पुष्प खिले हैं। इनमें यह बीच का गुलाबी फूल सबको मात कर रहा है।

शशि ऐसे पुष्प को देखे तो तुरन्त तोड़कर अपने जूड़े में खोंस ले। एक क्षण भी न लगाये इसे तोड़ने में।"

मैं मुस्कराकर बोला, "तब तो तुम्हारी शशि गुलों की प्रेमी नहीं नम्बर एक की शत्रु है।"

"क्यों", उमादेवी ने विस्मयपूर्ण स्वर में पूछा।

"इसलिए कि वह सुन्दर गुलाब को सहन ही नहीं कर सकतीं। अपने से पृथक कहीं सौंदर्य की झलक शायद उन्हें असहनीय हो उठती है और इसीलिए वह उसे तोड़कर तुरन्त अपने ही सौंदर्य में मिला लेना चाहती हैं," मैंने कहा।

मेरी विनोदपूर्ण बात सुनकर उमादेवी बहुत हँसीं और तभी उनकी दृष्टि हमारी कोठी के सम्मुख फैली लम्बी सड़क पर गई तो क्या देखा कि आचार्यजी दो व्यक्तियों के साथ पैदल खरामा-खरामा घूमते चले आ रहे थे। एक महिला थीं और, दूसरे एक विशाल काय लम्बे-चौड़े डील-डौल के व्यक्ति।

उमादेवी बोलीं, "वह देखिए आचार्यजी चले आ रहे हैं और दो अन्य व्यक्ति भी हैं उनके साथ।"

उमादेवी के कहने पर मेरी दृष्टि उधर गई और मैंने आचार्यजी को देखा। उनके साथ आने वाले दोनों व्यक्तियों को भी देखा और मेरी जबान से निकला, "आदमी कोई शानदार मालूम देता है। कितना सुन्दर डील-डौल है इसका!"

तब तक वे लोग और निकट आ गए। उमादेवी ने ध्यान-पूर्वक आने वाली महिला पर दृष्टि गड़ाई तो वह एकदम प्रसन्नता में झूम उठीं और बोलीं, "अरे! यह तो शशि आ रही है।"

"शशि!" मैंने आश्चर्य से कहा।

उमादेवी बोलीं, "और इनके साथ मालूम देता है कि राजा सुमेरसिंह भी आ रहे हैं।"

उमादेवी की बात सुनकर मैं और वह अनायास ही उनके स्वागत के लिए आगे बढ़ गए। हमने कोठी के द्वार से लगभग पचास पग आगे बढ़कर उनसे भेंट की।

शशिप्रभा उमादेवी से लिपट गई और दोनों बड़े प्रेम से गले मिलीं।

आचार्यजी मेरा अपने साथ वाले व्यक्ति से परिचय कराते हुए बोले, "यतीन्द्र बाबू ! हमारे मित्र, सहपाठी और बड़े भाई राजा सुमेरसिंह से भेंट कीजिए।"

मैंने गद्‌गद होकर उन्हें नमस्कार किया और उन्होंने मेरे नमस्कार का बहुत ही प्रसन्न-मुद्रा में उत्तर दिया।

आचार्यजी फिर मेरा परिचय कराते हुए बोले, "आप हैं हमारे मित्र प्रिंसिपल यतीन्द्र बाबू। फिलासफ़ी के प्रकाण्ड पण्डित और आपकी पत्नी शशि की सहेली उमा के पति।"

आचार्यजी की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह ने मुझे दुबारा नमस्कार किया और मुस्कराकर बोले, "आचार्यजी से आपकी चर्चा कई बार सुनी। आज साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

तब तक हम लोग कोठी के लॉन में आगये थे। प्रातःकाल का समय था। मन्द पवन बह रही थी। मैंने कहा "यहीं बाहर लॉन में बैठा जाए तो सुन्दर रहेगा। मैं अभी कुरसियाँ डलवाये देता हूँ।"

मेरी बात सुनकर राजा सुमेरसिंह बोले, "इतने सुन्दर लॉन की शोभा को आप कुरसियाँ डलवाकर भला क्यों खराब करेंगे ? हमें इसी प्राकृतिक मखमल के गद्दे पर बैठने में प्रसन्नता होगी।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर उमादेवी को अपना और शशि का वह पुराना जीवन याद आ गया जब दोनों कई-कई घण्टे तक साथ-साथ महल के लॉन में बैठी, लेटी रहती थीं।

उमादेवी मुस्कराकर शशिप्रभा से बोलीं, आओ शशि ! एक बार जीजाजी की आज्ञा पालन करके हम दोनों भी अपने जीवन की उस पुरानी मधुर स्मृति को साकार करके देख लें जब हम दोनों घास पर बैठा, लेटा करते थे और खेलते-कूदते थे।

देखिए कैसे अचानक वह पुराना जीवन फिर से लौट आया !"

राजा सुमेरसिंह मधर वाणी में बोले, "मेरी आज्ञा में श्रीमती उमादेवी के सम्मुख उनके बचपन को उपस्थित करने की क्षमता है, यह जानकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।"

हम सब लोग बाहर लॉन में ही बैठ गए।

उमादेवी और शशिप्रभा की पुरानी, जाने कितने दिन की दबी हुई, बातों का पिटारा खुल गया।

एक अपनी बातें बंद करती थी तो दूसरी प्रारम्भ कर देती थी। हम तीनों श्रोता बने उनकी स्नेहपूर्ण बातों में रस ले रहे थे। उन दोनों के जीवन क्योंकि हम तीनों से सम्बद्ध थे इसलिए हमें लग रहा था कि बातें हमारे ही जीवन की हो रही हैं।

आचार्यजी कुछ देर बाद बोले, "अब बहुत होलीं तुम दोनों की बातें। हम लोगों को भी तो अब कुछ अपनी बातें कर लेने दो।"

आचार्यजी की बात सुनकर शशिप्रभा मुसकराकर बोलीं, "आज बातें बन्द करना कठिन है आचार्यजी ! इतने दिन से पारस्परिक स्नेह का जो पुष्प कुम्हलाया हुआ था उसे पहले आपने खिलने और मुस्कराने का अवसर प्रदान किया और फिर कह रहे हैं कि वह महके नहीं, अपनी सुगन्धि को अपने ही अन्दर ही घोंट कर रख ले। यह भला कैसे सम्भव है ?"

शशिप्रभा की बात सुनकर आचार्यजी हँसकर बोले, "अच्छा भाई महक लो तुम लोग। हम लोग यों ही चुपचाप सुगन्धि में बैठे रहते हैं।"

पुष्प की चर्चा होते ही मुझे शशि के जूड़े की बात याद आगई। मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि उनके जूड़े में इस समय भी गुलाब का फूल लगा हुआ था।

उसे देखकर मुझे अपनी फुलवारी के उस फूल की स्मृति हो आई जिसके पास खड़े मैं और उमादेवी शशिप्रभा के विषय में बातें कर रहे थे।

मैं चुपके से उठा और धीरे से उस गुलाब के फूल को तोड़ लाया। यह पुष्प निश्चय ही शशिप्रभा के जूड़े से लगे फूल से बहुत सुन्दर और बड़ा था।

फिर अपने स्थान पर बैठकर मैंने वह पुष्प उमादेवी की ओर बढ़ा दिया और कहा, "उमादेवी ! लो यह पुष्प अपनी सहेली शशिप्रभा के जूड़े में लगा दो। इसके लग जाने पर मुझे विश्वास है कि आप दोनों के स्नेह का पुष्प और भी अधिक महक उठेगा।"

मेरी इस बात ने सभी उपस्थित सज्जनों के हृदयों में रस की ऐसी मीठी धारा प्रवाहित कर दी कि सब आनन्द-विभोर हो उठे।

राजा सुमेरसिंह मुस्कराकर बोले, "यतीन्द्र बाबू, आपने इस समय कमाल कर दिया। बहुत सुन्दर फूल लाये हैं आप ! गुलाब के सुन्दर फूल से सुन्दर वस्तु शशि को अन्य कोई नहीं लगती।"

राजा साहब की बात सुनकर उमादेवी मुस्कराकर गुलाब की पंक्ति की ओर संकेत करके बोलीं, "यह गुलाब की पंक्ति ठीक वैसी ही है जैसी बाँकीपुर में शशि ने हमारी कोठी में लगवाई थी। मैंने यह इसीलिए यहाँ लगवाई है क्योंकि मुझे विश्वास था कि इसका एक पुष्प अपने जूड़े में लगाने के लिए कभी-न-कभी किसी दिन मेरी सहेली शशि यहाँ अवश्य आयेगी।"

उमादेवी की बात सुनकर शशिप्रभा भावुकता में भरकर बैठी नहीं रह सकीं और बड़ी फुर्ती से खड़ी होती हुई बोलीं, "उमा, इसने

दिन तू चाहे लाख मुझसे दूर रही, परन्तु कभी जीवन में ऐसा क्षण नहीं आया जब मैं तुझे भूल गई हूँ।"

"मैं जानती हूँ शशि !" उमादेवी भी खड़ी होती हुई बोली और दोनों गुलाब की पंक्ति की ओर चली गईं।

राजा सुमेरसिंह आचार्यजी की ओर मुँह करके बोले, "देखिए कितने दिन पश्चात् यह आनन्द का अवसर इन दोनों के जीवन में अचानक आगया।"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "आपका यहाँ आना अचानक हो गया। इसलिए अवसर की तिथि समीप हो गई, वरना यह अवसर तो अब आता ही। जब तक पारस्परिक परिचय नहीं मिला था तब तक अवसर नहीं आया, परन्तु परिचय मिल जाने पर यह लम्बा नहीं खिच सकता था।"

तब तक उमादेवी और शशिप्रभा भी वहीं आगईं। शशि के हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा था।

शशि राजा सुमेरसिंह के निकट बैठते हुए फूलों का गुच्छा उनके हाथ में देकर बोलीं, "ये देखे आपने ? कितने सुन्दर गुलाब खिले हैं उमा की फुलवारी में !" और फिर अपनी वेणी को तनिक खम देकर बोलीं, "कितना सुन्दर फूल लगाया है उमा ने मेरी वेणी में !

नित्य हम लोग जब विद्यालय जाते थे तो इसी प्रकार का फूल लेकर यह नटखट पहले तीन-चार बार मेरे गालों पर मारती थी और फिर मेरी वेणी में उसे खोंस देती थी।

यह उमा बड़ी नटखट थी बचपन में।"

'उमा बड़ी नटखट थी बचपन में, यह बात आचार्यजी ने सुनी तो उन्हें न जाने कितनी पुरानी बात स्मरण हो आई। वह मुस्कराकर बोले, "शशि, क्या तुमने भी उमा का नटखट रूप देखा है ? उमा का

वह नटखट रूप सचमुच ही बहुत आकर्षक था। कितना चंचलपन, और कितनी इनर्जी थी इसमें कि बस क्या कहूँ ?"

"और आप में नहीं थी ?" उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "कितनी कूद-फाँद, उछल-कूद मचाते थे आप ?" इतना कहकर उमादेवी हम सबकी ओर संकेत करके बोलीं, "आज आप सबको मैं आचार्यजी के नटखटपने की ही बातें सुनाती हूँ। आचार्यजी की और मेरी जीवन में प्रथम भेंट आपके नटखट जीवन को ही लेकर हुई थी।"

आचार्यजी उमादेवी की बात सुनकर मुस्करा उठे और उसी मुद्रा में बोले, "उमा सच कह रही है शशि ! प्रयाग में पिताजी और उमा के पिता के बँगले पास-पास ही थे। हमारे बँगलों के सामने एक छोटा-सा मैदान था। मैं उसमें अपना गेंद-बल्ला लेकर प्रातःकाल ही निकल जाता था और तभी कोठी में घुसता था जब भूख सताने लगती थी।

एक दिन मैंने गेंद उछालकर बल्ले से टोल मारा तो वह उमा की कोठी में चली गई और जाकर तड़ाक से इसकी कमर में लगी।

यह बिलबिला उठी।

मैंने पहले तो इसकी चीख-पुकार सुनकर भय के कारण वहाँ से भाग निकलना चाहा, परन्तु फिर मन ने गवाही नहीं दी।

मैं नित्य उमा को अपनी कोठी के लॉन में खेलते-कूदते देखता था और सत्य यह था कि यह मुझे बहुत अच्छी लगती थी।

मेरे मन पर चोट लगी कि मेरे हाथ से उमा को चोट आई और मैं लजाता हुआ इनकी कोठी में घुस गया।

मैंने दीन-भाव से इनकी माताजी के सम्मुख क्षमा माँगते हुए कहा, "मुझसे भूल हो गई माताजी ! मैंने जान कर कुछ नहीं किया।"

मेरा भोला चेहरा देखकर उमा की माताजी मुस्करा उठीं। उनका सारा क्रोध जैसे एक क्षण में काफ़ूर हो गया। वह मधुर कंठ से बोलीं,

"कोई बात नहीं बेटा ! चोट ठीक हो जाएगी उमा की। तुम तनिक मैदान में आगे बढ़कर खेल लिया करो।"

उस दिन मैंने प्रथम बार ठहरकर उमा के अश्रुपूर्ण नेत्रों को देखा और उमा ने मेरी ओर।"

कहते-कहते आचार्यजी चुप हो गए।

उमा देवी मुस्कराकर बोलीं, "वह घटना आज भी, आपके मानस पर इतनी सजीव है यह मैं आज ही जान पाई आचार्यजी !

सचमुच वह मिलन बड़ा ही विचित्र था सतीश के पिताजी !" मुझे सम्बोधित करके उमादेवी बोलीं, "जब मेरी कमर में वह गेंद आकर लगी थी तो मैं बिलबिला उठी थी और साथ ही बड़ा क्रोध भी आ रहा था उस व्यक्ति पर जिसने वह गेंद उधर फेंकी थी।

फिर धीरे-धीरे चोट की पीड़ा कुछ कम हो गई और जब आचार्यजी को माताजी के सम्मुख नतमस्तक खड़े क्षमा-याचना करते मैंने देखा तो मेरी पीड़ा एकदम समाप्त-सी हो गई। मेरे होंठों पर मुस्कराहट नाच उठी और जब मुझे मुस्कराते हुए आचार्यजी ने देखा तो यह तनिक लजा गए।"

लॉन में बैठे-बैठे बातें करते काफी समय निकल गया था। सूर्य देवता उदय होकर अपनी धूप पूर्व दिशा से छिटकाते हुए आकाश में ऊपर को बढ़ आए तो मैं बोला, "चलिए अब अन्दर चलकर बैठेंगे। चाय भी तैयार हो गई होगी, परन्तु अभी सतीश नहीं लौटा। आज जाने सुबह-ही-सुबह किधर निकल गया है।"

हम सब खड़े होकर अन्दर कमरे में पहुँचे तो तब तक सतीश भी आगया।

सतीश का उमादेवी ने शशिप्रभा से परिचय कराया तो शशिप्रभा ने उसे अपनी गोद में बिठलाते हुए कहा, "तुमने मुझे नहीं पहचाना होगा बेटा ! और पहचानते भी कहाँ से ? पहले कभी तो देखा नहीं।"

फिर उमादेवी की ओर देखकर बोलीं, "सतीश बेटा की सूरत बिलकुल तुमसे मिलती है।"

इसके पश्चात् सबने साथ-साथ बैठकर चाय पी।

चाय के पश्चात् आचार्यजी बोले, "अच्छा उमा ! मुझे अब आज्ञा दो। मैं संध्या को चार बजे आऊँगा। तुम्हारे मेहमानों को तुम्हारे घर तक पहुँचा दिया। अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।"

[१७]

आचार्यजी के चले जाने पर राजा सुमेरसिंह और मैं अपने ड्राइंग-रूम में चले गए और शशिप्रभा तथा उमादेवी, उमादेवी के कमरे में।

राजा सुमेरसिंह आराम कुरसी पर बैठकर बोले, "आचार्यजी ने आपका मुझसे बहुत बार पारस्परिक बातों में जिक्र किया, परन्तु मिलने का सौभाग्य आज इतने दिन पश्चात् हुआ। अपनी सहेली उमादेवी के विषय में तो न जाने कितनी बार शशिप्रभा ने अनेक बातें की हैं, परन्तु हमें पता ही नहीं था कि वह हमारे इतनी निकट होकर भी इतनी दूर बनी हुई हैं।

उमादेवी ने जबसे बाँकीपुर छोड़ा, फिर कभी वहाँ आने का नाम ही नहीं लिया। और लेतीं भी बेचारी कहाँ से, जब भगवान् ने इनका वहाँ जाने का सहारा ही समाप्त कर दिया !"

राजा सुमेरसिंह की इस बात ने मुझे अपनी सास और अपने ससुर की, एक लम्बे काल पुरानी, स्मृति फिर से याद दिला दी। अपनी सास की भोली-भाली शक्ल मेरी आँखों के सम्मुख नाच उठी और ससुर साहब का विशाल मस्तक दमदमाता हुआ मेरे सम्मुख आगया।

मैंने धीरे से कहा, "बाँकीपुर से सचमुच ही उमादेवी का सम्बन्ध मेरे विवाह के पश्चात् केवल चन्द महीनों का ही रहा। अपने ससुर की अस्वस्थता का समाचार पाकर मैं बाँकीपुर गया और उन्हें अपने साथ ही बम्बई ले गया। मेरी सास भी वहाँ अकेली नहीं रहीं। वह भी मेरे साथ चली आई।

बम्बई में मैंने उनका भरसक उपचार कराया परन्तु उनका स्वास्थ्य नहीं लौट सका। बम्बई में ही उनकी मृत्यु हो गई और उनके एक माह पश्चात् ही सास का भी स्वर्गवास हो गया।

बस फिर बाँकीपुर जाने का कभी मन ही नहीं हुआ। बाँकीपुर के मकान का हम लोग जिस प्रकार ताला लगा कर आए थे, वह फिर कभी हमने जाकर खोला ही नहीं।

सच बात तो यह है राजा साहब! कि बम्बई में रहते यहाँ से सम्पर्क बनाये रखना भी हम लोगों के लिए कठिन कार्य था और फिर हमारा रह ही क्या गया था बाँकीपुर में ?

मेरी बात सुनकर राजा साहब बोले, "रह क्यों नहीं गया था यतीन्द्र बाबू! क्या आप कभी जीवन में उस स्थान को भुला सकते हैं जहाँ से आपको उमादेवी जैसा रत्न प्राप्त हुआ ?"

मैं कुछ लजाकर बोला, "भुला तो नहीं सकता राजा साहब, परन्तु फिर जाते भी तो भला किस सहारे को लेकर ?"

हम दोनों ये बातें कर ही रहे थे कि तभी उमादेवी और शशिप्रभा ने हमारे कमरे में प्रवेश किया। हम दोनों ने खड़े होकर उन्हें आदर-पूर्वक बिठलाया।

शशिप्रभा बैठकर राजा सुमेरसिंह की ओर मुँह करके बोलीं, "आज आप भी सुन लीजिए इस उमा की बचपने की बात। मैंने इसकी खोज-खबर निकालने के लिए कुओं में जाल डलवा दिए और

यह मेरा ठिकाना मालूम होने पर भी मेरे और आपके पास इसलिए नहीं आई कि मैं रानी और आप राजा हैं।"

फिर उमादेवी की ओर मुँह करके बोलीं, "उमा ! मैं रानी थी, सही, परन्तु क्या मैं शशिप्रभा नहीं रही थी ? क्या मैं तेरी सहेली नहीं थी ? क्या मैंने तुझे अपनी छोटी बहन के समान कभी स्नेह नहीं किया था ? क्या तू ने मुझे अपनी बड़ी बहन का आदर प्रदान नहीं किया था ?"

शशिप्रभा की बात सुनकर उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "किया क्यों नहीं था शशि ? और जो किया था उसमें अन्तर भी कहाँ आया ? क्या तुम आज भी मुझे अपनी छोटी बहन के समान स्नेह नहीं करतीं ? क्या मेरे मन से आपका आदर किसी प्रकार कम हो गया है ? वे सब चीजें ज्यों-की-त्यों हैं शशि ! उनमें न कभी कोई अन्तर आया और न आ ही सकता था।

आपके हृदय को परखने में मैंने कभी भूल नहीं की और इसी प्रकार अपनी उमा को भी आपने कभी ग़लत नहीं समझा।"

कहते-कहते उमादेवी रुक गईं। वह एक शब्द भी आगे नहीं बोल सकीं।

ये बातें सुनकर राजा सुमेरसिंह बोले, "आप दोनों का रहस्य भाई हमारी तो कुछ समझ में नहीं आया। यह सब जो कुछ तुम लोग कह रही हो, यदि सत्य है तो फिर इतने दीर्घकाल तक तुम एक-दूसरे से पृथक् कैसे बनी रहीं ?"

राजा सुमेरसिंह की यह बात सुनकर शशिप्रभा मुस्कराकर बोलीं, "इसमें भूल मेरी ही है प्राणनाथ ! उमा निर्दोष है। मैंने ही इसके कोमल हृदय को ठेस पहुँचाई। अपनी उसी भूल के दंडस्वरूप मुझे ईश्वर ने उमा से इतनी दिन का लम्बा विछोह दिया।"

इतना कहकर शशिप्रभा ने वह गुड्डे और गुड़ियों वाली कहानी

सुनाई जो एक दिन उमादेवी ने मुझे और आचार्यजी को सुनाई थी और अन्त में कहा, "मुझे उमा के गुड्डे और गुड़िया की मुक्त कंठ से प्रशंसा करनी ही चाहिए थी। परन्तु यह सत्य कह रही हूँ कि मेरे उस कर्त्तव्य को पूरा न करने के पीछे न तो मेरा अभिमान ही था और न उमा की उपेक्षा ही। मैं अपने ही गुड्डे और गुड़िया के सौन्दर्य में इतनी लिप्त हो गई थी कि अन्य किसी बात की सुधि ही नहीं रही मुझे। इसे आप मेरी भूल मान सकते हैं, मेरा मोह मान सकते हैं, मेरी भावुकता-पूर्ण मूर्खता कह सकते हैं परन्तु ··

शशिप्रभा कुछ और कहना चाहती थीं परन्तु उमादेवी ने उनके होंठों पर हाथ रख दिया।

"अब और कुछ न कहो शशि! मैंने बहुत बड़ी भूल की। मैंने अपनी बड़ी बहन के प्रति सचमुच अन्याय किया। यह मेरा दोष नहीं, मेरी बुद्धि का दोष था। मेरी बुद्धि ने मेरे हृदय की भावनाओं को अपनी मुट्ठी में दबाकर मुझसे यह अनर्थ कर दिया।" कहते-कहते उमादेवी के नेत्रों में आँसू भर आये।

आज के इस दृश्य में प्रस्फुटित दो देवियों के हृदय की सरलता ने मुझे आज जीवन में जितना प्रभावित किया उतना सम्भवतः अन्य किसी अवसर पर मैं प्रभावित नहीं हुआ।

शशिप्रभा और उमादेवी के जीवन में जो गाँठें बँध गई थीं वे आज आप-से-आप खुल गईं।

मुझे लगा कि उन दोनों के हृदयों पर रखी हुई दो भारी शिलाएँ अचानक फिसलकर एक ओर को गिर पड़ीं और उन दोनों के मन आकाश में उड़ने लगे।

कितनी सरलता से दोनों ने अपने-अपने मन की ग्रंथियों को खोलकर फेंक दिया, यह बहुत ही अनुपम घटना रही।

राजा सुमेरसिंह ने मुस्कराकर कहा, "शशि ! दिल्ली की यह यात्रा हम लोगों के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखेगी।

तुम्हें अपनी खोई हुई बहन मिल गई और उमा ने अपनी जिस भोली बहन को अभिमान भरा समझ लिया था वह भ्रम दूर हो गया।"

इतना कहकर राजा साहब भावुकतापूर्ण स्वर में बोले, "उमादेवी ! शशि मेरी पत्नी हैं और तुम्हारी बड़ी बहन। इस देवी के जीवन में मैंने कभी आज तक अभिमान की एक रेखा भी खिंची हुई..."

राजा साहब की बात को बीच में ही काटकर शशि प्रभा उमादेवी का हाथ पकड़कर खड़ी होती हुई बोलीं, "बस रहने दीजिए आप मेरी प्रशंसा के पुल बाँधने को।" और फिर उमादेवी की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोलीं, "उमा ! तुम्हारे जीजाजी जितने वृद्ध होते जा रहे हैं उतने ही कवि बनते जा रहे हैं।"

"कवि !" आश्चर्य-चकित होकर उमादेवी बोलीं।

"हाँ-हाँ, कवि ! कविगण अपनी प्रेमिकाओं की प्रशंसा से नहीं अघाते और तुम्हारे जीजाजी ने मेरी प्रशंसा करने का ठेका ले लिया है। जब देखो तब और जिसको सामने देखा उसी के सामने इन्हें जहाँ तनिक-सा भी अवसर मिला कि मेरी प्रशंसा के पुल बाँधते-बाँधते थक जाते हैं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर मैं मुस्कराता हुआ बोला, "राजा साहब आपकी प्रशंसा उचित ही करते हैं शशिप्रभा जी ! आपके त्याग और कर्त्तव्यनिष्ठता के जो ज्वलंत उदाहरण हमारे सम्मुख आचार्यजी ने प्रस्तुत किये हैं, उन्हें देखते हुए आपकी जो कुछ भी प्रशंसा राजा साहब करें वह कम है।"

मेरी बात सुनकर राजा सुमेरसिंह अतिशय भावुकता में भरकर बोले, "आप ठीक कह रहे हैं यतीन्द्र बाबू ! मैंने अनेक बार चाहा है

कि शशि की जीभरकर प्रशंसा करूँ परन्तु मैं कभी कुछ भी नहीं कर पाया। शशि ने मेरे जलते हुए जीवन को शीतलता प्रदान की है। यह व्यक्ति जो आपके सम्मुख बैठा आपसे बातें कर रहा है, न जाने कब का अपने ही अन्दर की ज्वाला में जलकर भस्म हो गया होता, यदि शशि ने अपनी शीतल किरणों से उसे शान्त न कर दिया होता।"

यह बात सुनकर शशिप्रभा उमादेवी का हाथ पकड़े-ही-पकड़े फिर सोफे पर बैठ गईं। उमादेवी भी उनके साथ बैठ गईं।

शशिप्रभा मेरी ओर देखकर मुस्कराती हुई बोलीं, "मालूम देता है आचार्यजी ने हम लोगों की बहुत प्रशंसा की हुई है आपके सम्मुख।

आचार्यजी का हमारे प्रति अपूर्व प्रेम और कृपा रही है। इस लिए हो सकता है उन्होंने अतिशयोक्ति से काम लिया हो और राजा साहब की बात यह है कि इन्हें आजकल इसके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य ही नहीं है। मैंने कह न दिया आपसे कि यह कवि बनते जा रहे हैं।" कहकर वह हँस पड़ीं और फिर धीरे-धीरे बोलीं, "मालूम देता है आचार्यजी ने आप लोगों को हमारे विषय में सब कुछ पहले से ही बतला दिया है।"

मैं बोला, "सब कुछ अभी नहीं बतला सके हैं आचार्यजी ! इस बार जब आपके यहाँ से लौटे तो उमादेवी ने यह रहस्य खोला कि आप उमादेवी की सहपाठिन और अभिन्न सहेली रही हैं।

तभी हम लोगों की दिलचस्पी आपके जीवन में बढ़ी और आचार्यजी ने धीरे-धीरे हमें उसका परिचय देना प्रारम्भ किया।

आज कई दिन से हम लोग प्रातःकाल और संध्या को जब मिलकर बैठते हैं तो आपको ही लेकर वार्ता चलती है।"

हम लोग इधर बातों में लिप्त रहे, उधर महराजिन ने भोजन बना लिया।

सतीश तभी आकर बोला, "पिता जी, भोजन तैयार हो गया है।"

"तो चलो फिर, देर क्या है?" मैंने कहा।

और हम लोग साथ-साथ भोजन करने चले गए।

[१८]

संध्या को हम सब लोग बाहर बगीचे के लॉन में बैठे बातें कर रहे थे। इधर-उधर की बातें चल रही थीं।

तभी आचार्यजी पर राजा सुमेरसिंह की दृष्टि पड़ी तो वह खड़े होकर बोले, "आचार्यजी आरहे हैं।"

हम सबने खड़े होकर आचार्यजी का स्वागत किया। आचार्यजी आकर राजा सुमेरसिंह के पास बैठे तो वह मुस्कराकर बोले, "हमें क्या मालूम था कि हमारे आने से पूर्व ही आचार्यजी ने हमारा सब कच्चा चिट्ठा उमादेवी और इनके पति के सम्मुख खोल कर रखा हुआ है।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "जिसे आप कच्चा चिट्ठा कह रहे हैं, आपको क्या मालूम कि वह कथा यहाँ कई दिन से प्रातः और संध्या को रामायण-पाठ की तरह चल रही है।"

आचार्यजी की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह खूब हँसे और हँसते हुए ही बोले, "आपने हमारी कथा का रामायण की भाँति पाठ खूब किया आचार्यजी! आखिर उसमें आपको ऐसी क्या विशेषता दिखलाई दी कि उसका पाठ करने की नौबत आगई?"

आचार्यजी बोले, "विशेषता की बात आप क्या जानें सुमेरसिंह जी ? अपनी विशेषताएँ कभी-कभी आदमी स्वयं नहीं जानता और फिर विशेषताओं का ही तो हम कथा में उल्लेख नहीं करते, साधारण बातें भी विशेषताओं से कम महत्त्वपूर्ण नहीं होतीं। विशेषताएँ तो जीवन में कभी-कभी ही उभर कर आती हैं और साधारण बातों से जीवन की लड़ी गुँथती है। जीवन की माला में साधारण बातों के ही तो दाने अधिक होते हैं। तो क्या वे सब व्यर्थ हैं ? उनका उल्लेख होना ही नहीं चाहिए ? मैं कहता हूँ उनका स्थान पहले है।

और फिर बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं जीवन में जिन्हें व्यक्ति साधारण ही गिनता रहता है, परन्तु उनका दूसरों के जीवन पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव हो जाता है।"

इतना कहकर आचार्यजी क्षणिक मौन के पश्चात् मुस्कराकर बोले, "प्रेमी प्रेमिका की कौन-कौन विशेषताएँ आँकता है इस बात का अन्दाज प्रेमिका बहुत देर में लगा पाती है सुमेरसिंहजी !

मुझे एक घटना याद आगई इस प्रसंग में। मेरा एक नौकर था फूलसिंह। बहुत ही सीधा और सच्चा व्यक्ति था। उसके मन में छल-छिद्र के लिए कोई स्थान ही नहीं था।

एक दिन वह अपनी नवविवाहिता पत्नी को मेरे यहाँ लाया। उसकी पत्नी साधारण रूप से अच्छी थी, परन्तु उसकी एक आँख कुछ भेंगी थी।

मेरी आँखों ने उस स्त्री के भेंगेपन को उसके शरीर की एक कमी के रूप में देखा और जब उसकी पत्नी चली गई तो मैंने उससे कहा, "फूलसिंह, पत्नी तो अच्छी मिल गई तुझे। परन्तु इसकी दाहिनी आँख कुछ भेंगी बना दी भगवान् ने, यही जरासी खराबी रह गई।"

मेरी बात सुनकर फूलसिंह ऐसे खेल उठा जैसे आदमी की बिच्छू

के काटने पर दशा होती है। उसकी पत्नी के बदन में कोई असुन्दर चीज़ भी है, इसकी कल्पना ही कभी नहीं की थी उसने।

वह भोले मन से बोला, 'बाबूजी, अच्छी है वह तो। बुरा तो उसका कुछ भी नहीं बनाया भगवान् ने। आँख तो वह प्यार में चढ़ा लेती है कभी-कभी।'

मैं उस भोले व्यक्ति की बात सुनकर दंग रह गया। मैंने अन्दर-ही-अन्दर अनुभव किया कि मैंने उसकी पत्नी की बनावट में कमी बतला कर उसके हृदय को ठेस पहुँचाई।

मैं तुरन्त बोला, 'तुम ठीक कह रहे हो फूलसिंह! मुझे मालूम नहीं था कि वह प्रेम में आँखें घुमाती है। मैंने समझा शायद आँख में ही कोई खराबी है।'

'नहीं बाबूजी, कोई खराबी नहीं है उसकी आँख में। उसकी आँखें बहुत अच्छी हैं बाबूजी! मुझे बहुत अच्छी लगती हैं उसकी आँखें।'

सो अच्छे और बुरे, विशेषता और साधारणता का सम्बन्ध जितना वास्तविक वस्तु से होता है उससे कहीं अधिक अनुभव करने वाले के मन से होता है। हर व्यक्ति हर व्यक्ति को अपनी भावना और अपने विचार से देखता है और उसी के आधार पर अपना मत निश्चित करता है।

मैंने आपको, शशिप्रभा और श्रीमती मेरी को जिस रूप में देखा परखा है उसकी मेरी अपने अनुभव की कहानी है। वही मैं उमादेवी और यतीन्द्र बाबू को सुना रहा था। उस कहानी में बहुत से श्रद्धा के स्थल हैं, बहुत से त्याग और तपस्या के, बहुत-से कर्त्तव्य-निष्ठा के और बहुत-से वीरता के। क्या आप समझते हैं कि वे भुलाने की वस्तु हैं? वे सर्वदा-सर्वदा के लिए अमर कर देने वाले क्षण हैं आपके जीवन के, जो जीवन-पथ के आम राहगीरों के लिए प्रकाश-स्तम्भों के समान हैं।"

कहते-कहते आचार्यजी भावुकता से गद्गद हो उठे। वह आगे कुछ कहते-कहते रुक गए।

आचार्यजी को मौन होते देखकर उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "आचार्यजी ने मुझे बहन शशि और जीजाजी के जीवन का परिचय कराया, इसके लिए मैं आचार्यजी की हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मैंने अपनी बहन का केवल बाल-रूप ही देखा था। आपके उसी जीवन की झाँकियाँ केवल मेरे सम्मुख थीं। उसके पश्चात् क्या हुआ, इसका मुझे कभी ज्ञान ही न होता यदि भावुकता में आकर मैंने उस दिन यह रहस्य आचार्यजी पर न खोल दिया होता कि शशि मेरी बड़ी बहन हैं।"

फिर कुछ ठहरकर वह बोलीं, "भावुकता मैंने देखा है साधारणतया परेशानी का ही कारण बनती है। इसको चतुर व्यक्ति दुर्बलता मानते हैं और चतुर व्यक्तियों के बीच भावुकता होती भी दुर्बलता ही है, परन्तु अपने आदमियों के बीच भावुकता कभी दुर्बलता नहीं होती। इसीलिए तो मेरी दुर्बलता का यह परिणाम निकला कि शशि बहन के जीवन में दुबारा प्रवेश करने का मुझे अवसर मिल सका, जीजाजी के दर्शन कर सकी और इनका स्नेह प्राप्त कर सकी।

यदि मैं चतुर और बुद्धिमान ही बनी रहती तो यह अवसर जीवन में कभी नहीं आता।"

उमादेवी की भावुकतापूर्ण बात सुनकर शशि ने उन्हें स्नेह से अपनी अंक में भर लिया। वह गद्गद होकर बोलीं, "मेरी उमा, इतनी भोली भी है, यह मेरे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं जान सकता।"

शशिप्रभा की बात सुनकर आचार्यजी बोले, "और भी जान सकते हैं भाभी! अपनी बहन को अपने स्नेह के बन्धन में इतनी बुरी तरह जकड़ने का प्रयास न करो कि दूसरों को इनके पास तक पहुँचने का अवसर ही न रहे।

यह सत्य है, इनकी भावुकता की अनुभूति तुम्हें मिली है परन्तु अवसर अन्य लोगों के जीवन में भी कम नहीं आये हैं।

आचार्यजी की बात सुनकर शशिप्रभा ने मेरी ओर देखा और फिर आचार्यजी की ओर देखकर बोलीं, "मैं सचमुच भावुकता में कुछ अनिधिकार चेष्टा कर गई। आपके पास तो उमा बहन के जीवन-दर्पण यतीन्द्र बाबू भी मौजूद हैं। इनसे अधिक गहरी अनुभूति कोई अन्य व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।"

आचार्यजी शशि की बातें सुनकर बोले, "शशि भाभी, आपके जीवन के विषय में जो कुछ मुझे पता था, उसका मैंने उमादेवी को परिचय दिया, परन्तु आपको मैंने यह कभी नहीं बतलाया कि देश की जनता में उमादेवी नाम की जिस महिला ने ख्याति प्राप्त की हुई है, वह उनकी छोटी बहन यही उमा है।"

उमा का जीवन कुछ चन्द व्यक्तियों के विशेष परिचय मात्र का जीवन बनकर कभी नहीं रहा। उमा का जीवन राष्ट्र का जीवन रहा है और इसीलिए वह बहुत स्पष्ट भी है।

आचार्यजी का यह वाक्य सुनकर राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा ने श्रद्धा की दृष्टि से उमादेवी की ओर देखा। उमादेवी के कारनामे देश-विदित थे। उनकी प्राचीन स्मृतियों को अपने पास बैठी अपनी छोटी बहन से सम्बद्ध करके शशि प्रभा धीरे से बोलीं, "उमा! हमारे विद्यालय की सबसे सुन्दर वक्ता थी। विद्यालय की सभी लड़कियों में इसके प्रति महान् आकर्षण था।

मैं अभी भी भूली नहीं हूँ उन अनेक घटनाओं को जब उमा की सह-पाठिनें इसके शब्दों को वेद-वाक्य मानकर इसका अनुकरण करती थीं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "बस रहने दो शशि बहन मेरी अधिक प्रशंसा करने को। इसके लिए तो आचार्य जी ही कुछ कम नहीं हैं।

मेरी प्रशंसा करके ही तो इन्होंने मुझसे जेलों की यात्राएँ कराई हैं।"

उमादेवी की हास्यपूर्ण बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। सबको बहुत आनन्द आया उमादेवी की इस बात में।

तभी अचानक उमादेवी आचार्य की ओर मुँह करके बोलीं, "अच्छा अब आप अपनी कथा प्रारम्भ करिए। यह हमारे सौभाग्य की बात है कि कथा के प्रभाव से प्रसन्न होकर हमारी कथा की देवी और देवता स्वयं हमारे मध्य आपधारे।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी बोले, "यह बात तुमने खूब कही उमा! मेरी कथा सचमुच बहुत प्रभावशाली निकली।

कल रात्रि को मैं यहाँ से घर पहुँचा तो पड़ौसी ने मुझे लाकर एक तार दिया।

तार सुमेरसिहजी का था और यह रात्रि को दस बजे की मेल से पधार रहे थे, उसमें यह सूचना थी।

मैं तुरन्त स्टेशन जाने को उद्यत हुआ तो क्या देखा कि एक ताँगा वहाँ आकर रुका और उसमें से सुमेरसिंहजी और शशिप्रभा उतर पड़े।

यह घटना वास्तव में ऐसी हुई जैसे देवी और देवता दर्शन देते हैं।"

इतना कहकर आचार्यजी ने पिछली कथा को प्रारम्भ किया। वह राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा की ओर मुँह करके बोले, "हम लोग कथा के उस भाग पर पहुँच चुके थे जब आपकी बिरादरी ने आपका बहिष्कार कर दिया था और तब आपने पत्र देकर मुझे सहसपुर बुलाया था।"

यह सुनकर राजा सुमेरसिंह बोले, "आचार्यजी, वह घटना वास्तव में बड़ी भंयकर आई थी जीवन में। उस समय यदि मुझे आपका सहारा न मिला होता तो मेरी नौका भँवर में फँस गई थी।"

आचार्यजी हँसकर बोले, "उमा ! यह घटना उस समय की है जब तुमसे मेरी भेंट नहीं हुई थी।"

आचार्यजी की हंसी में अपनी हँसी मिलाते हुए उमादेवी बोलीं "आपका तात्पर्य प्रथम भेंट से है या दूसरी भेंट से ?"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी प्रसन्नता से लोट-पोट हो गए। वह राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा की ओर देखकर बोले, "देखा आपने। उमा कभी किसी को किसी बात का भी पूर्ण स्पष्टीकरण कराए बिना एक इंच आगे नहीं बढ़ने देगी और मेरी भूल को तो यह कभी सहन कर ही नहीं सकती।"

वह फिर उमादेवी की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले, "मेरा मतलब दूसरी भेंट से है। हमारी प्रथम भेंट तो उस समय हुई थी जब तुमने यहाँ बैठे सज्जनों में से किसी की सूरत भी नहीं देखी थी।"

"तो उमा से आप प्रयाग से परिचित हैं आचार्यजी ?"

आचार्यजी बोले, "हाँ भाभी ! प्रयाग की भूमि पर ही हम दोनों का जन्म हुआ है। मेरे और उमा के जन्म-स्थानों में अधिक-से-अधिक पाँच सौ गज की दूरी होगी। हम दोनों की कोठियाँ अगल-बगल में ही थीं।"

आचार्यजी की यह बात सुनकर शशिप्रभा कुछ लजाकर बोलीं, "तब तो वास्तव में मैंने उमा को अपने अकेले ही स्नेह में बाँधने की चेष्टा करके भूल की थी। उमा के चरित्र के विषय में आपकी अनुभूति मुझसे भी प्राचीन है। मैं आपके समकक्ष नहीं ठहर सकती।"

शशिप्रभा की यह बात सुनकर आचार्यजी बोले, "भाभी, व्यक्ति का जीवन पुष्प के समान है। वह हर व्यक्ति के सम्मुख एक ही रूप में नहीं खुलता। इसमें पहले-पीछे की बात नहीं है, दिशा की बात है। उमा का जो रूप आप पर प्रस्फुटित हुआ वह मुझ पर नहीं हो सकता और जो रूप यतीन्द्र भैया पर प्रकट हुआ वह हम दोनों पर नहीं खुल सकता। हम तीनों की ही नजरें पृथक-पृथक हैं।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "देखो भाई अपनी-अपनी नजरों को आप लोग सँभाल कर रखिए। कहीं तीन-तीन नजरों का भार मेरे लिए सहना कठिन न हो जाय। मैंने सुना है कि एक नजर के लग जाने से ही पता नहीं क्या-से-क्या हो जाता है। फिर यहाँ तो तीन-तीन नजरें हो गईं।"

उमादेवी की उपहासपूर्ण बात सुनकर सबने उसमें बहुत रस लिया।

आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "उमा! घबराओ नहीं तुम! ये नजरें तुम पर भार-स्वरूप नहीं पड़ सकतीं कभी। ये तो तुम्हें कोमल पुष्प के समान ही अपने ऊपर उठाए रहेंगी।"

आचार्यजी की बात सुनकर मुझे अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई। मैंने सचमुच आज तक उमादेवी को एक पुष्प के समान ही सुरक्षित रखने का प्रयास किया था।

जब-जब यह सुमन आन्दोलनों के तूफानी बवंडरों से टकराया, मेरा हृदय चकनाचूर हो गया। मैं आप लोगों से कह नहीं सकता कि मैंने कैसे-कैसे पत्थर का हृदय करके इनके कष्ट की कल्पना को सहन किया।

अनेक बार मुझे रात-रात भर नींद नहीं आई। मैंने जीवन में कई बार आचार्यजी को भी अपने मन में बुरा-भला कहा है, परन्तु जब तूफान शान्त होगया और यह खिला पुष्प फिर मेरे सम्मुख आगया तो मेरा सब कष्ट, सब क्षोभ, आचार्यजी के प्रति सारा क्रोध जाता रहा।

एक लम्बे काल तक मेरे जीवन का यही क्रम चला।

आचार्यजी मेरी बात सुनकर मुस्कराते हुए बोले, "यतीन्द्र भैया! तुमने आज तक जो बात कभी स्वीकार नहीं की थी, देखो वह आज भावुकता के प्रवाह में कैसे तुम्हारे हृदय से निकलकर बाहर चली आई। तुम्हारे सरल और शान्त जीवन में तूफान लाने की भूल मुझसे

हुई अवश्य है परन्तु सत्य यही है कि वह भूल मुझसे प्रयास करने पर भी कभी रुक नहीं पाई। मैंने लाख प्रयास किया अपनी भूल को सुधारने का परन्तु वह भूल बराबर मेरे जीवन का अंग ही बनती चली गई। वह भूल मेरा साथ आज भी कहाँ छोड़ पा रही है यतीन्द्र बाबू ! परन्तु यह आपको स्वीकार करना ही होगा कि मेरी उस भूल को बनी रहने देने के आप और उमा दोनों ही समान रूप से उत्तरदायी हैं।

कुछ दिन तक मैं अपनी इस भूल पर बहुत दुखी रहा। कभी-कभी उदासीन रहने का भी मैंने नाटकीय प्रयास किया, परन्तु जब देखा कि तुम दोनों को ही मेरी भूल प्रिय लगने लगी है तो मैंने भी उसे भूल समझना बन्द कर दिया। फिर मैंने अपनी उस भूल को अपने गुण के रूप में ग्रहण कर लिया क्योंकि यदि वह गुण न होती तो तुम जैसे दो चतुर व्यक्तियों को वह अच्छी कैसे लगने लगती ?'

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी आँखें तरेरकर अपने उसी उपहासपूर्ण मधुर स्वर में बोलीं, "यह लीजिए ! यह आज आचार्यजी ने भूल को गुण बनाने की एक नई ही फिलासफी प्रस्तुत कर दी।"

और फिर राजा सुमेरसिंह को सम्बोधित करके बोलीं, "कुछ सुना आपने जीजाजी ! भला यह ठीक है क्या कि यदि कुछ भोले-भाले व्यक्ति हमारी भूल को आपसी व्यवहार के नाते नजरअन्दाज करते रहें तो हम अपनी उन भूलों को अपने गुण गिनने लगें ?"

उमादेवी की बात सुनकर राजा साहब ठहाका मारकर हँस पड़े। वह प्रसन्नता में भरकर बोले, "आचार्यजी ! आपने आज उमादेवी से भेंट कराकर जीवन में आनन्द की सरस धारा प्रवाहित कर दी। ऐसी विनोदप्रिय देवि का परिचय जीवन की उस सुन्दर और मधुर स्मृति के समान है जो कभी विस्मरण नहीं हो सकती।"

और फिर उमादेवी की ओर मुँह करके बोले, "उमा ! तुम्हारी बात माननी ही होगी हमें कि आचार्यजी को अपनी भूल अपने गुण के

रूप में ग्रहण नहीं करनी चाहिए थी, परन्तु साथ ही तुम और यतीन्द्र बाबू भी नितान्त निर्दोष नहीं ठहराये जा सकते। आचार्यजी को भी धोखे में डालने वाला आखिर तुम्हारा भोलापन ही तो रहा। मेरा मन तो यही कहता है कि इसमें दोष न कुछ तुम्हारा है और न यतीन्द्रबाबू का और न आचार्यजी का ही।"

"तब फिर किसका दोष है?" उमादेवी ने पूछा।

"तुम्हारे भोलेपन का," राजा सुमेरसिंह बोले।

राजा साहब का उत्तर सुनकर उमादेवी कुछ लजाकर बोलीं, "आचार्यजी आपके सहपाठी और मित्र हैं। इसलिए आपने इनका पक्ष लिया। अब मैं यही कहूँगी कि मैंने आपको जज बनाने में भूल की। मुझे अपना मामला शशि बहन की अदालत में पेश करना चाहिए था।"

उमादेवी की बात सुनकर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

आचार्यजी बोले, "देखा आपने सुमेरसिंहजी! यह उमा है। यह अपनी बात कभी नीची नहीं पड़ने देगी।"

आज इधर-उधर की बातों में ही पर्याप्त समय निकल गया। पूर्व कथा आगे नहीं बढ़ने पाई।

महराजिन ने भोजन की सूचना दे-दी थी और हम सब लोग भोजन के लिए उठ गये।

[१९]

भोजन के उपरान्त हम लोग ड्राइंग-रूम में आकर बैठ गए। उमादेवी आज बहुत प्रसन्न थी। कितने ही दिन की बीमारी के

पश्चात् दो-चार दिन पूर्व ही पलंग छोड़ा था परन्तु मैं देख रहा था कि मानो आज उन्हें देखकर कोई यह कह ही नहीं सकता था कि वह इतनी भयंकर बीमारी से त्राण पाकर मुक्त हुई हैं।

आचार्यजी उमादेवी के चेहरे की प्रसन्नता को देखकर बोले, "उमा ! आज तुम बहुत प्रसन्न दीख रही हो। शशि और भैया सुमेरसिंह ने आकर तुम्हारे थके-माँदे बदन को हर्ष का अवसर दिया है, इससे तुम्हारे स्वास्थ्य को निश्चित रूप से बहुत बल मिलेगा।"

आचार्यजी की बात सुनकर शशि आश्चर्यचकित होकर बोलीं, "क्यों क्या बीमार थी उमा ?"

आचार्यजी बोले, "साधारण बीमार नहीं थी यह शशि भाभी ! भयंकर रोग था। डाक्टरों ने क्षय-रोग घोषित कर दिया था। परन्तु उमा ने डाक्टरों की राय को मात दे-दी।

अभी जब मैं आपके यहाँ मनोरमा की शादी में गया था तो इसकी दशा बड़ी खराब थी। इसे भयानक स्थिति में छोड़कर गया था। यदि वहाँ वह वर-पक्ष वालों ने गड़बड़-घुटाला न मचाया होता तो मैं प्रथम दिन ही वहाँ से लौट आता।"

तभी मुस्करा कर उमादेवी बोलीं, "अब नाम न लीजिए उस डायन बीमारी का आचार्यजी ! इस बार इस बीमारी ने बड़ा कष्ट दिया।

उसकी याद भी आती है तो बदन काँपने लगता है। चौबीसों घंटे के ज्वर ने तमाम बदन पिंजर कर दिया था।"

शशिप्रभा ने उमादेवी के चेहरे पर अब ध्यान से देखा तो वह बोलीं, "सचमुच बहुत दुर्बल हो गई उमा ! तेरी लच्छेदार बातों में फँसकर मैं तेरे स्वास्थ्य की ओर ध्यान ही नहीं दे सकी।

बहुत निर्बल हो गई हो तुम।"

आचार्यजी हँसकर बोले, "अभी चार दिन पहले तक तो यह

पलंग पर भी बड़ी कठिनाई से बैठ पाती थी। यह आपका प्रेम ही है भाभी ! कि जिसने इसकी इतनी प्रसन्न-मुद्रा बना दी है कि जिससे आप यह भी नहीं पहिचान पाईं कि यह इतनी बीमार रही है।"

इसी प्रकार कुछ देर इधर-उधर की बातों के उपरान्त उमादेवी बोलीं, "आचार्य जी ! अब आप अपनी कथा प्रारम्भ कीजिए वरना आज का दिन फिर यूँ ही बातों में निकल जायेगा।"

आचार्यजी हँस कर बोले, "शशि भाभी ! तुम्हारी कहानी उमा ने बड़े चाव से सुनी है। यों हम सभी ने उसमें रस लिया है, परन्तु उमा ने विशेष रस लिया है।"

फिर उन्होंने वह कथा प्रारम्भ कर दी। वह बोले, "मैंने कुछ दिन के लिए अपना डेरा सहसपुर में ही लगा लिया और भैया सुमेरसिंह की बिरादरी के गाँवों का दौरा किया। कुछ सम्मानित व्यक्तियों से परिचय प्राप्त किया और 'आर्य समाज' के प्रचार को अपना माध्यम बनाकर आम लोगों के विचारों को संगठन की ओर मोड़ा। जाति के उन लालों को एक सूत्र में बाँधने पर बल दिया जिन्हें किसी भूल के कारण जाति ने अपने से पृथक कर दिया था।

यह कार्य मैंने इतने प्रभावात्मक ढंग से किया कि एक वर्ष में ही मैंने जाति के प्रतिष्ठित लोगों का जनमत राजा सुमेरसिंह के पक्ष में कर लिया।

फलस्वरूप दूसरे वर्ष की जातीय सभा के वार्षिक अधिवेशन पर उसके सभापति पद के लिए भैया सुमेरसिंह को आमन्त्रित किया गया।

मेरे इस कार्य में बहादुरसिंह ने बहुत बड़ी अड़चनें पैदा कीं और एक बार तो उसने मुझे मूर्खतापूर्ण धमकी देने का भी प्रयास किया, परन्तु उसे अपने ध्येय में सफलता न मिल सकी।

भैया सुमेरसिंह के सामने आकर इनका विरोध करने का साहस

उसमें नहीं था। पहले वर्ष भी उसने जो कुछ किया था, वह दूसरों की आड़ में ही छिपकर किया था।

जब यह सब हो गया तो एक दिन बहादुरसिंह मुझसे मिलने आया और बोला, "क्यों भाई नरेन्द्र ! क्या तुम्हें यही करना चाहिए था ? आखिर मैंने तुम्हारी क्या हानि की है और सुमेरसिंह ने तुम्हें क्या दे दिया है, जो तुमने ऐसा किया ?"

मैं मुस्कराकर बोला, "आखिर मैंने किया ही क्या है बहादुर ? तुम बहुत भोले हो, जो समझ बैठे हो कि मेरे किए कुछ हुआ है। तुम्हें तुम्हारे उन साथियों ने ही धोखा दिया है जिन्हें तुम अपना मित्र समझकर राजा सुमेरसिंह को अपना शत्रु बना बैठे।

परन्तु राजा सुमेरसिंह के दिल में अब भी तुम्हारे लिए स्थान है। तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे फिर पहले जैसे ही सम्बन्ध आपस में बनवा देता हूँ।"

यह बात बहादुरसिंह सुनकर बोला, "यार क्यों जले पर नमक छिड़क रहे हो नरेन्द्र ! परन्तु यह तुमने उचित नहीं किया।

मैंने तुम्हें जो पत्र लिखा था, वह बड़े विश्वास के साथ लिखा था।"

पत्र का नाम सामने आते ही शशि और राजा सुमेरसिंह के कान खड़े हो गए। राजा साहब बोले, "कैसा पत्र ?"

आचार्य जी एक दम अवाक् रह गए। उन्होंने इस पत्र का जिक्र कभी आज तक राजा सुमेरसिंह और शशि से नहीं किया था। वह व्यर्थ बहादुरसिंह को उनकी दृष्टि में और अधिक गिराना नहीं चाहते थे। वह कुछ सकुचाकर मुस्कराते हुए बोले, "मालूम देता है कि हम लोगों की यह भेंट ऐसी होगी कि जिसमें छिपा कुछ भी नहीं रहेगा।

जिस दिन मुझे आपका पत्र सहसपुर आने के लिए मिला था, उसी दिन एक पत्र बहादुरसिंह का भी आया था। पत्र मूर्खतापूर्ण था, इसी-लिए मैंने उसके विषय में आपसे कभी कुछ जिक्र नहीं किया।"

राजा सुमेरसिंह बोले, "आखिर सुनूँ तो कि उसमें क्या लिखा था उस धूर्त ने।"

पत्र आचार्यजी की जेब में ही पड़ा था। उन्होंने वह निकालकर शशि भाभी के हाथ में देकर कहा, "पत्र भैया की अपेक्षा भाभी जी से अधिक सम्बन्धित है, इसलिए भाभी के ही सुपुर्द कर रहा हूँ।"

पत्र पढ़कर शशिप्रभा को हँसी आगई और उन्होंने हँसते-हँसते ही वह पत्र राजा सुमेरसिंह के हाथ में दे-दिया।

पत्र पढ़कर राजा सुमेरसिंह बोले, "आपने उचित ही उपाधि दी है बहादुर को। वह है ही वास्तव में 'काठ का उल्लू।' इतना बड़ा आफीसर हो गया। कलक्टर के पद पर कार्य कर रहा है और खाक की बुद्धि नहीं। पता नहीं कैसे काम चलाता होगा अपना।

मेरा तब के बाद आज तक उससे कोई सम्पर्क नहीं रहा।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर आचार्यजी बोले, "काम चला पाता तो क्या बरखास्त होकर अपने घर बैठता ? उसे पैसे की भूख ही बहुत अधिक थी और फिर जैसा जीवन उसने अपना बना लिया था उससे तो रुपए को भस्म करने वाली भट्टी बन गया था वह।"

इतना कहकर आचार्यजी उपहास के स्वर में अपनी शशि भाभी की ओर मुँह करके बोले, "यदि शशि भाभी की उस पर कुछ कृपा हो जाती तो शायद उसकी वह भूख कुछ मिट जाती, परन्तु शशि भाभी ने उसके पतंग की डोर प्रारम्भ में ही काट दी।"

आचार्यजी की बात सुनकर शशिप्रभा को हँसी आगई। वह बोलीं, "जब उनके मित्र आचार्यजी ही उन्हें धोखा देकर उनके शत्रु से जा मिले तो भला मैं बेचारी क्या कर सकती थी ? आप साथ देते तो उनका भाग्य कुछ चमकता।

आज आपकी अपनी सरकार है। वह आपके मित्र हैं। आप चाहें

तो उनकी धन-लिप्सा पूर्ण हो सकती है। परन्तु आप हैं कि आपको अपने मित्र का कोई ध्यान ही नहीं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर आचार्यजी हँसकर बोले, "वह आया था मेरे पास। सन् पचास में उसने मेरे पास बहुत चक्कर लगाए, परन्तु कुछ दाल नहीं गली। अन्त में निराश होकर उसने आना स्वयं ही बन्द कर लिया।

सुना है आजकल किसी शुगर-मिल में मैनेजर के पद पर कार्य कर रहा है।"

"मैनेजर, अरे मैनेजर उस गधे को किसने बना दिया? वह जहाँ भी जाएगा, वहाँ चौपट ही करेगा। ऐसा बदमाश आदमी है कि जो उसे सहायता देगा यह उसीका पत्ता साफ करेगा, जिस थाली में खाएगा उसी में छेद करने की उसकी नीयत रहेगी।

मैंने देखा है कि कुछ लोगों की गलत मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति हो जाती है। उसकी प्रवृत्ति ही दोषपूर्ण हो चुकी है।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "पहले आप साँप को दूध पिलाते रहे और जब वह बड़ा होकर काटने को लपका तो आप कहते हैं कि वह काटने क्यों दौड़ता है।

अब शशि भाभी! तुम ही बताओ कि सर्प भैया को काटने के लिए दौड़ेगा या पुचकारने के लिए? इंग्लैण्ड में यह जान-बूझकर भी कि वह ऐय्याश है, बदमाश है, उसे रुपया देते रहे। यह कहाँ की समझदारी थी? यानी अपने शत्रु को आप सशक्त करते रहे।

वह आपका जातीय भाई था, इसीलिए मैं कभी भी आप दोनों के बीच में नहीं पड़ा। यदि पड़ जाता तो मुझे शायद दोनों से हाथ धोने पड़ते। मैं क्या मूर्ख था जो अपने मित्रों का व्यर्थ के लिए अविश्वासपात्र बन जाता?

जब अवसर आया तो मैंने आपकी आज्ञा का पालन करके उसके कुकृत्य का जमकर विरोध किया।

बहादुरसिंह ने अपने पत्र में, आपने देखा नहीं, जहाँ अपने लक्ष्य की पूर्ति में मुझसे सहयोग माँगा है, वहाँ मेरे प्रदान किये हुए 'काठ के उल्लू' पद को भी अपने नाम से उतार फेंकने पर गर्व अनुभव किया है। अब आप ही सोचिए कि अपने ही प्रदान किए हुए इस पद का मैं ऐसा अपमान कैसे सहन कर सकता था ?"

आचार्यजी की इस बात पर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी बद्रीपंडित वहाँ आ गए और उन्होंने किसी आगन्तुक के आने की सूचना आचार्यजी को दी।

आचार्यजी ने मुस्कराकर बद्रीपंडित से पूछा, "कुछ नाम भी पूछा तुमने उनका ?"

बद्रीपंडित ने एक चिट आचार्यजी के हाथ में दी, जिसपर वह आगंतुक का नाम लिखा लाया था।

चिट देखकर आचार्यजी बैठे-बैठे ही उछल पड़े और हँसकर बोले, "लो राजा साहब ! आपके नाटक के सब पात्र एकत्रित हो गए।"

राजा सुमेरसिंह ने पूछा, "कौन पधारे हैं ?"

आचार्यजी हँसकर बोले, "वही हैं, आपके जातीय भाई श्री बहादुरसिंहजी।"

"बहादुरसिंह !" कहकर राजा सुमेरसिंह के मस्तक पर सलवटें पड़ गईं।

वह कड़क कर बोले, "मैं उस नीच का मुँह भी देखना नहीं चाहता। आप कृपया कहीं उसे मेरी आँखों के सामने न ले आना, अन्यथा अनर्थ हो जाएगा।"

आचार्यजी हँसकर बोले, "घृणा आदमी के काम से करनी चाहिए भैया सुमेरसिंह ! आदमी से क्या घृणा ?

बहादुर आखिर वही तो है जिसके सुधार के लिए आपने भरसक प्रयास किया था। मैं जानता हूँ कि वह सुधरने वाला व्यक्ति नहीं है परन्तु फिर भी उससे घृणा क्यों ?

उसे आने दीजिए मण्डली में। देखिए कैसा आनन्द आता है।"

उस व्यक्ति को मैं कल प्रातःकाल की सभा में आप महानुभावों के सम्मुख पेश करूँगा। उस बेचारे ने, शशि भाभी पर आपने जो अत्याचार किया है, उसके प्रति सहानुभूति ही तो प्रकट की है। सहानुभूति प्रकट करना कोई अन्याय नहीं है।

अपने मित्र के अन्याय को स्वीकार करने की जो दिलेरी उसने दिखलाई, आपको उसकी सराहना करनी चाहिए।"

आचार्यजी की बात पर उमादेवी हँसकर बोलीं, "जीजाजी के जातीय भाई श्री बहादुरसिंह से भेंट करके हम सबको प्रसन्नता होगी और मुझे विश्वास है कि जीजाजी भी ये सब बातें ऊपरी तौर पर ही कर रहे हैं, वैसे यह मन से उन्हें देखना ही चाहते हैं।"

उमादेवी की उपहासपूर्ण बात सुनकर राजा सुमेरसिंह के होंठों पर भी मुस्कराहट नाच उठी। वह हँसकर बोले, "अच्छा लाओ, कल उस 'काठ के उल्लू' को भी। आखिर देखें तो उस मूर्ख ने अपनी क्या दशा बना ली है ?"

आचार्य बद्रीपंडित के साथ चले गए। उन्हें विदा करके हम लोग भी अपने बिस्तरों पर लेट गए।

उमादेवी और शशिप्रभा एक कमरे में थीं और मैं तथा राजा सुमेरसिंह जी दूसरे में। एक कमरे की बात बड़ी सुगमता से दूसरे कमरे में सुनी जा सकती थीं।

रात्रि को शशिप्रभा और उमादेवी की बहुत देर तक बातें होती रहीं। मैं चुपचाप अपने बिस्तर पर लेटा उनकी बातों में रस लेता रहा।

उमादेवी ने पूछा, "शशि ! आपने बहुत बुरा किया जो श्रीमती मेरी को साथ नहीं लाईं। ले आतीं तो उनसे भी परिचय का सौभाग्य प्राप्त हो जाता।"

शशिप्रभा बोलीं, "उनका बहुत मन था आने का उमा ! परन्तु कुछ काम ही उनको ऐसा आवश्यक था कि मैं अधिक आग्रह नहीं कर सकी।"

"ऐसा क्या काम निकल आया उन्हें ?" उमादेवी ने पूछा।

शशिप्रभा बोलीं, "उनके कामों की तुम कुछ न पूछो उमा ! उनका जीवन इतना व्यस्त है कि कभी-कभी हम दोनों ही ऊबकर उनसे कह बैठते हैं, 'श्रीमती मेरी ! जीवन-भर बहुत काम कर लिया आपने। अब इस वृद्धावस्था में कुछ आराम कर लो। ये काम तो चलते ही जाएँगे।"

हमारी बात सुनकर वह मुस्कराकर बोलीं, 'आप कहते हैं कि मैं काम न करूँ, आराम करूँ, परन्तु मेरा मन कहता है कि मैं खूब काम करूँ। अब कहिए किसकी बात मानूँ ?"

इसपर उमादेवी ने हँसकर पूछा, "परन्तु उनका काम क्या है, तनिक यह भी तो सुनूँ।"

शशिप्रभा बोलीं, "उनका काम ? उनका काम बहुत महत्त्वपूर्ण है उमा ! भारत को उस देवी का आभारी होना चाहिए। उन्होंने भारतीय बच्चों को शिक्षा का दान दिया है।

जब वह भारत आईं तो सहसपुर में एक भी विद्यालय नहीं था। उन्होंने शिक्षा की दिशा में कदम बढ़ाया और राजा साहब ने एक विद्यालय का स्थापना की।

उस विद्यालय से सम्बद्ध आज हमारे इलाके में पैंतीस विद्यालय चल रहे हैं। इनमें तीन डिग्री कालेज हैं, सात इन्टरमीडिएट कालेज और शेष हाईस्कूल हैं। ये सब उन्हीं की देन हैं।

इन सब संस्थाओं का संचालन-भार उन्हीं पर है। यह दिशा उन्हें आचार्यजी ने उसी समय सुझाई थी जब उनकी शादी को लेकर बहादुरसिंह ने एक तूफान खड़ा कर दिया था। उस घटना का उनके हृदय पर गम्भीर प्रभाव पड़ा था। उनके उस आघात पहुँचे हृदय पर आचार्यजी ने मरहम लगाया। यह बोले, "श्रीमती मेरी ! यह जो कुछ भी हुआ इसके मूल में अविद्या है। इसलिए आप आज से अपना जीवन भारत में शिक्षा-प्रसार की दिशा में लगाएँ।

बस वह दिन था और आज का दिन है कि उन्होंने शिक्षा के अतिरिक्त और कुछ सोचा ही नहीं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर उमादेवी मुक्त कंठ से बोलीं, "प्रशंसनीय, शशि, वास्तव में प्रशंसनीय ! श्रीमती मेरी का कार्य निर्विवाद रूप से बहुत ही प्रशंसनीय है। सचमुच हमारे देश को ऐसी नारी का आभारी होना चाहिए और आज की अपनी स्वदेशी सरकार को उन्हें पुरस्कृत करना चाहिए।

कितना दुर्भाग्य है हमारे देश का कि ऐसी योग्य महिला को भी हमारा समाज आदर प्रदान नहीं कर सका और उसके विरुद्ध आवाज भी उठाई तो ऐसे व्यक्ति ने जो देश के सुशिक्षित व्यक्तियों की अपने को नाक गिनते हैं।"

उमादेवी की बात सुनकर शशिप्रभा बोलीं, "उमा ! जिस समय यह आपत्ति का पहाड़ हम पर टूटा तो मेरी तबीयत ठीक नहीं चल

रही थी। बच्चे के जन्म से केवल पाँच दिन पूर्व की ही यह बात थी।

जब तक मैं पूर्ण स्वस्थ नहीं हो गई, मेरे कानों तक भी इस बात को राजा साहब और श्रीमती मेरी ने नहीं आने दिया।

परन्तु उमा! आचार्यजी ने हमारी बिरादरी में एक वर्ष तक जो कार्य किया उसे देखकर हम लोग दंग रह गए। उन्हीं दिनों आचार्यजी ने श्रीमती मेरी को दस विद्यालय खुलवाने में सहयोग दिया।"

आचार्यजी की प्रशंसा सुनकर उमादेवी का मन आलोड़ित हो उठा। वह उत्साहित होकर बोलीं, "आचार्यजी की क्या बात कही आपने शशि! उनकी वाणी में जादू है, उनके शब्दों में अमृत है, उनकी दृष्टि में आकर्षण है और उनके सामीप्य में आनन्द है।

वह इतने बड़े तूफान हैं कि अपने बवंडर में देश-भर की जनता को उड़ाकर आगे ले जा सकते हैं। उनके सामने आपकी बिरादरी को हाँक कर अपने आगे-आगे कर लेना कौन बड़ी बात थी। बेचारे बहादुरसिंह जैसे दस हज़ार व्यक्ति भी यदि जन्म लेकर आते और गले फाड़-फाड़ कर चिल्लाते तो उनका कोई प्रभाव नहीं होता और आचार्यजी का उस कार्य को करने को कहने के लिए केवल एक शब्द ही पर्याप्त होता।

मैंने आचार्यजी के एक शब्द से तूफान और उसमें से आग बरसती हुई देखी है और फिर एक शब्द में उस तूफान पर लहराते हुए बादलों को बरसते और शान्त होते देखा है।'

उमादेवी के मुख से आचार्यजी की प्रशंसा सुनकर शशिप्रभा प्रसन्न होकर बोलीं, "उमा! आचार्यजी ने सचमुच ऐसा ही किया। मैंने देखा कि एक वर्ष में वे सब लोग जो बहादुरसिंह का साथ दे रहे थे आ-आकर राजा साहब के पैर चूमने लगे।

हम लोग बहुत भयभीत हो उठे थे उस समय जब हम पर यह वज्रपात हुआ। आचार्यजी की दया से हमें हमारा पारिवारिक तथा

जातीय सम्मान फिर से प्राप्त हुआ। हम सब आचार्यजी के हृदय से आभारी हैं।

राजा साहब आचार्यजी का बड़ा आदर करते हैं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर उमादेवी बोलीं, "जहाँ तक आदर की बात है आचार्यजी जीजाजी को अपने बड़े भाई के समान मानते हैं। उनसे अधिक आदर वह सम्भवतः अन्य बहुत कम व्यक्तियों का करते हैं।

यह आदर-भाव ही तो था जो उन्हें आपके यहाँ शादी में मेरे बीमार रहने पर भी खींचकर ले गया।"

शशिप्रभा बोलीं, "उमा ! आचार्यजी को हम अपने परिवार का ही सदस्य गिनते हैं। हम उन्हें मित्र, साथी या मेहमान के रूप में नहीं देखते।"

शशिप्रभा की बात सुनकर उमादेवी हँसकर बोलीं, "शशि ! आचार्यजी की यही दशा उन सब परिवारों में है जहाँ वह जाते हैं।

उनका स्नेह समस्त भारतीय जनता पर समान रूप से फैला हुआ है।"

शशिप्रभा बोलीं, "तुम सच कह रही हो उमा ! आदमी इस जीवन में बहुत आये, परन्तु आचार्यजी जैसा बेलाग व्यक्ति दूसरा दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

श्रीमती मेरी भी आचार्यजी का बहुत आदर करती हैं। वह कहा करती हैं, कि यदि आचार्यजी मुझे अपने जीवन के सदुपयोग का मार्ग न सुझाते तो जाने मेरी क्या दशा होती। यदि आचार्यजी ने मुझे यह न समझा दिया होता कि मेरा जो अपमान भारत में हुआ, वह सामाजिक कुरीति और अविद्या के कारण हुआ, तो मैं जीवन-भर अपने मन-ही-मन उस अपमान की ज्वाला में जलती रहती। चाहे मौन ही रहती और अपने हृदय की पीड़ा को किसी पर भी व्यक्त न करती,

परन्तु मेरा मन कभी हल्का न होता, मेरा चित्त कभी प्रसन्न न होता, मेरे जीवन में निराशा के बादल छाए रहते, मेरे होंठों पर कभी मुस्कराहट न आती और यदि आती भी तो वह मुस्कराहट का उपहास-मात्र ही होती।

श्रीमती मेरी आचार्यजी को अपना मार्ग-दर्शक मानती हैं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर उमादेवी बोलीं, "आचार्यजी सचमुच एक महान् मार्ग-दर्शक हैं शशि! आपने भारतीय जनता को स्वतन्त्रता का मार्ग दिखलाया है।

मैं तो यही मानती हूँ कि आपसे बड़ा मार्ग-दर्शक इस युग में अन्य कोई पैदा ही नहीं हुआ।

वह ऐसे व्यक्ति हैं शशि! जिनका जीवन में कभी कोई स्वार्थ ही नहीं रहा। उनके जीवन में मैंने परमार्थ को ही स्वार्थ के रूप में पनपते देखा है। दुनियाँ हँसती है तो उनके होंठों पर भी मुस्कराहट खेलती है और दुनियाँ रोती है तो उनका हृदय पीड़ा से भर जाता है। यह सच है कि मैंने उन्हें रोते भी कभी नहीं देखा, परन्तु कभी-कभी उन्हें देश की दशा को देखकर बहुत कष्ट होता है।

मैंने उन्हें स्वतन्त्रता-संग्राम के समय इतना दुखी कभी नहीं देखा जितना आजकल देख रही हूँ।"

"ऐसा क्यों?" शशिप्रभा ने पूछा।

"क्यों की बात कुछ न पूछो बहन! देश की दशा बहुत खराब होती जा रही है।

डेमोक्रेसी का जो सबसे बड़ा कुपरिणाम भारत को भुगतना पड़ रहा है वह यह है कि देश के राजनैतिक दल जनता में शताब्दियों पूर्व से चले आते हुए अंधविश्वासों और कुरीतियों का इसलिए विरोध नहीं करते कि कहीं लोग नाराज होकर उन्हें चुनावों में अपना मत न दें।

इसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप आज चौदह वर्ष का यह स्वतन्त्र देश अपने हृदय में रूढ़ियों के उसी विष को लिए बैठा है जो आज से शताब्दियों पूर्व विद्वानों द्वारा विष घोषित की जा चुकी हैं।

इन अंधविश्वासों के अतिरिक्त भी हमारे समाज की जो स्थिति है वह भी सन्तोषजनक नहीं है।

राष्ट्र के कामों की प्रगति से भी उन्हें सन्तोष नहीं है और सबसे अधिक कष्टप्रद उनके लिए वे समारोह हैं जिनकी शान-शौकत में दूसरे देशों से ऋण-स्वरूप प्राप्त किया हुआ धन पानी की भाँति बहाता है।

उनका हृदय रो उठता है जब वह यह सब होता हुआ देखते हैं, जिसकी महात्मा गांधी ने कभी कल्पना भी न की होगी।

हमारे देश में, इन दिनों जो सबसे दुखद घटना हुई है वह है चरित्र की भ्रष्टता। इन दिनों में भारतीय जनता का चरित्र बहुत गिरा है। पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति को जबरदस्त आघात पहुँचा है।

इसके उत्तरदायी देश के वे दल हैं जो अपने आपको राष्ट्र का मार्ग दर्शक समझते हैं। उनकी प्रवृत्तियों के कुप्रभाव से आम जनता के विचारों में भ्रष्टता का समावेश हो रहा है।

आज देश में इस सबके विरुद्ध एक क्रान्ति की आवश्यकता है और आपको यह जानकर हर्ष होगा कि आचार्यजी आजकल इसी दिशा में कार्य कर रहे हैं।

आचार्यजी का देशव्यापी कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका है और विभिन्न प्रदेशों में उसकी शाखाएँ भी स्थापित हो चुकी हैं।"

उमादेवी की बातें सुनकर शशिप्रभा मुग्ध स्वर में बोलीं, "उमा! मेरा हृदय हर्ष से फूला नहीं समा रहा यह देखकर कि मेरी बहन उमा इतनी समझदार है!

मैंने आचार्यजी के साथ कई बार तुम्हारा पत्रों में नाम पढ़ा था, परन्तु कभी यह ध्यान ही न आया कि यह मेरी ही उमा है।"

उमादेवी यह सुनकर चुप हो गईं।

फिर बातों की दिशा मनोरमा और उसके पति की ओर घूम गई, जो दूसरे दिन अहमदाबाद से दिल्ली आने वाले थे।

शशिप्रभा ने बतलाया, "वे दोनों कल प्रातःकाल आठ बजे यहाँ आयेंगे और कल ही दोपहर के हवाई जहाज़ से लड़के को विलायत जाना है।

उसी को सी ऑफ करने के लिए हम लोग आये हैं।"

"तो मनोरमा आपके साथ जाएगी ?"

"हाँ।"

उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "मनोरमा को आप मेरे पास छोड़ जाना। वह यहाँ रह जाएगी तो उसके बहाने से मैं कुछ दिन पश्चात् तनिक स्वस्थ होने पर सहसपुर आऊँगी।

वहाँ आऊँगी तो श्रीमती मेरी के भी दर्शन कर सकूँगी।"

शशिप्रभा हँसकर बोलीं, "तो रख लेना मनोरमा को। वह जैसी मेरी लड़की है, वैसी ही क्या तुम्हारी नहीं है ?

श्रीमती मेरी से मिलकर उमा ! तुम्हें सचमुच अपार हर्ष होगा ! बहुत ही कोमल हृदय पाया है उस देवी ने। मैंने तो, जब से भी उनसे सम्पर्क हुआ है, सर्वदा ही उनके हृदय में अमृत का सागर लहराता हुआ देखा है। आज तक कभी जीवन में एक भी ऐसा अवसर नहीं आया जब उनके किसी शब्द या कार्य से मेरे हृदय को तनिक भी ठेस पहुँची हो।

मुझे बहुत स्नेह करती हैं वह और सर्वदा ही मुझे बड़ी बहन का आदर प्रदान करती हैं।"

उमादेवी बोलीं, "शशि बहन ! श्रीमती मेरी के हृदय की कोमल भावनाओं के विकास में आपका बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह उसी

का परिणाम है कि उनके मीठे स्वभाव में बराबर मिश्री ही घुलती गई, कड़वाहट कहीं आने ही नहीं पाई।

फिर उनके चरित्र की भी यह विशेषता है कि वह आपकी सद्-भावना का सही मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकीं।

आपने नारी-समाज के सम्मुख अपने चरित्र से एक महान् आदर्श प्रस्तुत किया है। आपने अपने, जीजाजी और श्रीमती मेरी के जीवन में जो सामंजस्य स्थापित किया है वह अलौकिक वस्तु है, उसकी जितनी भी सराहना हो जाय, कम है।"

उमादेवी की भावनापूर्ण बात सुनकर शशिप्रभा बोलीं, "उमा! यह जो कुछ भी तुमने कहा, सत्य ही है, परन्तु यह भी सच है कि मेरे हृदय में अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने का श्रेय श्रीमती मेरी को ही है।

मुझे अपने विवाह से पूर्व ही यह ज्ञात हो चुका था कि तुम्हारे जीजाजी श्रीमती मेरी को प्रेम करते हैं और उनसे विवाह करना चाहते हैं।

परन्तु मेरा सम्बन्ध इनसे उनसे भी पूर्व स्थापित हो चुका था। हमारा यह सम्बन्ध मेरे पिताजी का स्मृति-चिह्न था, जिसे मैं किसी भी दशा में नष्ट नहीं होने देना चाहती थी।

दूसरी बात यह थी कि मैं इस सम्बन्ध के पश्चात् तुम्हारे जीजाजी को अपने हृदय-मंदिर के देवता के रूप में ग्रहण कर चुकी थी। मैं किसी भी दशा में अपने देवता को अपने हृदय-मन्दिर से खो देने को तैयार नहीं थी।

इसीलिए मैंने माताजी के मन में जो शंका बहादुरसिंह ने पैदा कर दी थी उसे दूर किया और यह विवाह सम्पन्न हो गया।

हमारे विवाह की सूचना बहुत कष्टपूर्ण वाक्यों में तुम्हारे जीजाजी ने श्रीमती मेरी को लिखकर भेजी।

परन्तु उसका जो उत्त र श्रीमती मेरी ने दिया, उसे तुम सुनोगी तो उनकी सराहना के लिए तुम्हारा मन उतावला हो उठेगा।

श्रीमती मेरी ने लिखा था।

"डियर सुमेर!

आपका पत्र मिला। पढ़कर सारे बदन में बेहोशी-सी भर गई। एक दम पसीना आगया और सिर चकराने लगा।

कुछ देर इसी प्रकार मैं सोफ़े पर पड़ी रही। पिताजी ने पत्र देखकर तसल्ली दी, परन्तु मन की उदासी दूर न हो सकी।

आज तीसरे दिन अपने को सँभालकर यह पत्र लिख रही हूँ।

जो होना था सो हो चुका। मुझे आपका जीवन में साथ नहीं मिल सका, इसका खेद जीवन-भर मेरे साथ चलेगा, परन्तु आपको चाहिए कि अब आप मुझे भूल जाएँ। क्योंकि यदि आपके हृदय में मेरी याद बनी रही तो शशि बहन के साथ आप न्याय नहीं कर सकेंगे और अब आप यह स्पष्ट रूप से समझ लें कि यदि आपने शशि बहन के प्रति न्याय नहीं किया तो आपके इस कार्य की मेरा हृदय कभी सराहना नहीं कर सकेगा।

मैं विश्वास करती हूँ कि आप दोनों का जीवन पारस्परिक प्रेम के बन्धन में बँधकर दोनों को सुख तथा शान्ति प्रदान करेगा।

मैं अपना कल्पित सुहाग शशि बहन के चरणों में न्यौछावर करती हूँ।

आज जब मैं यह पत्र डाक में छोड़ रही हूँ तो मुझे तनिक भी दुःख नहीं है। मैं आप दोनों के सुखी जीवन की हृदय से कामना करती हूँ।

आपकी

मिस मेरी"

उमादेवी का मस्तक श्रीमती मेरी के चरित्र के सम्मुख झुक गया। वह श्रद्धापूर्ण स्वर में बोलीं, "श्रीमती मेरी सचमुच एक देवी हैं शशि!

आपने उनके प्रति जो सद्भावनापूर्ण व्यवहार किया, वैसा करना आपका कर्त्तव्य ही था।"

"मैंने उसे निभाने का जीवन-भर प्रयास किया है उमा! और अब तो जीवन की अन्तिम यात्रा है। किसी दिन इसी मार्ग पर चलते-चलते ये हड्डियाँ बिखर जायेंगी।" शशिप्रभा ने कहा।

बातें करते-करते रात का एक बज गया था। घंटे पर उमादेवी की दृष्टि गई तो वह बोलीं, "अरे शशि! यह तो एक बज गया। हम बातों में ऐसे खो गए कि समय का ध्यान ही नहीं रहा।

अब सोना चाहिए। सुबह आपको स्टेशन भी तो जाना है। कहीं ऐसा न हो कि सुबह समय पर आँखें ही न खुल सकें।"

इसके पश्चात् दोनों में से किसी की भी आवाज सुनाई नहीं दी। कुछ देर सोने का प्रयास किया और फिर निद्रादेवी ने दबा लिया।

थोड़ी देर बाद मैं भी सो गया।

[२१]

दूसरे दिन प्रातःकाल मेरी आँखें खुलीं तो मैंने क्या देखा कि राजा सुमेरसिंह अकेले बाहर लॉन में घूम रहे थे। वह फूलों की क्यारियों के पास खड़े होकर एक गुलाब के फूल को देख रहे थे।

मैं भी उठकर उधर ही चला गया और बोला, "आज आँखें खुलने में तनिक देर हो गई, वरना उठता मैं भी काफी सवेरे हूँ। इतनी देर तक सोने का मैं भी आदि नहीं हूँ।

रात आप तो पलंग पर लेटे और निद्रादेवी की गोद में चले गए, परन्तु मैं लगभग एक बजे सो सका।"

"क्यों ? आप एक बजे तक क्या करते रहे ?" राजा साहब ने मुस्कराकर पूछा। "क्या फिर किसी के साथ बैठकर गप्पें लगाने लगे थे ?"

"करता तो कुछ नहीं रहा। बस नींद ही नहीं आई। बराबर के कमरे में उमादेवी और शशिप्रभा की जब बातें बन्द हुईं तभी मुझे नींद आई। उनकी बातें इतनी आकर्षक और हृदयग्राही थीं कि मैं सो ही नहीं सका," मैंने कहा।

"अच्छा !" राजा साहब हँसकर बोले। "एक लम्बे अरसे के बाद दोनों की भेंट हुई है, इसीलिए बातें करने के लिए भी बहुत मसाला जमा होगया होगा दोनों के पास। दोनों ने अपने-अपने मनों के दबे हुए गुब्बारों को निकाला होगा।"

थोड़ी देर में उमादेवी और शशिप्रभा भी जग गईं।

सतीश ने उठकर सबको प्रणाम किया।

प्रातःकाल के कामों से निवृत्त होकर मैं, राजा साहब और शशिप्रभा स्टेशन जाने के लिए तैयार हो गए।

हम लोग स्टेशन की ओर चले तो उमादेवी बोलीं, "आप लोगों के साथ चलने का मेरा भी मन हो रहा है परन्तु डरती हूँ उस भयानक बीमारी से कि जिसने इतने दिन पश्चात् मेरा किसी प्रकार पिंड छोड़ा है। मन कह रहा है कि मैं आपके साथ चलूँ और स्वास्थ्य मना कर रहा है। सोच रही हूँ किसकी बात मानूँ ?"

शशिप्रभा स्नेहपूर्ण स्वर में बोलीं, "तुम्हें अभी आराम करना चाहिए उमा ! मनोरमा और शेखर को लेकर हम लोग अभी आते हैं। अभी हम लोग जा नहीं रहे हैं कहीं।"

हम तीनों ट्रेन के समय से लगभग आधा घंटा पूर्व स्टेशन पर पहुँच गए। ट्रेन आज दस मिनट लेट थी।

इस प्रकार हमारे स्टेशन पहुँचने के ठीक चालीस मिनट पश्चात्

ट्रेन प्लेटफार्म पर आई। मनोरमा अपने डिब्बे की खिड़की से झाँकती हुई शशिप्रभा की नजर पड़ी और वह बोलीं, "वे लोग आगये।"

ट्रेन से मनोरमा और उसका पति शेखर उतरे। दोनों के चेहरे फूल जैसे खिले हुए थे।

शेखर ने हम सबको सादर प्रणाम किया। मनोरमा ने भी।

शशिप्रभा ने शेखर और मनोरमा को मेरा परिचय कराते हुए कहा, "मनोरमा! यह तुम्हारे मौसाजी हैं, उमा के पति यतीन्द्र बाबू। ये लोग बहुत दिन हमसे छिपे-छिपे फिरते रहे, परन्तु आखिर हमने इन्हें खोज ही लिया।"

शशिप्रभा की मोदपूर्ण बात सुनकर मैं बोला, "इस विषय में आप मुझे दोषी ठहरा रही हैं, यह बात न्यायसंगत नहीं है श्रीमती शशिप्रभा! मुझे तो कभी यह परिचय ही नहीं मिला, अन्यथा भेंट में इतने दिन कभी न हो पाते। मैं तो स्वयं चलकर आपके पास तक पहुँचना अपना सौभाग्य समझता।

आप दोष ही दें, तो अपनी बहन उमादेवी को दें, जिन्होंने मुझे कभी यह भी नहीं बतलाया कि उनकी कोई बड़ी बहन भी हैं जिन्होंने उन्हें भुला दिया है और जीवन के इतने लम्बे काल में हमारी खोज खबर ही नहीं ली।"

मेरी बात सुनकर राजा साहब हँसकर बोले, "भाई यतीन्द्र बाबू! खूब उत्तर दिया आपने! शशि का व्यंग्य अपने सिर से उतारकर उसका बोझा पहले उमादेवी के सिर पर रखा और फिर उमादेवी के सिर से उतारकर दुबारा शशि के सिर पर ही लाद दिया। अब शशि इससे बचकर नहीं भाग सकतीं।"

हमारी बातें सुनकर मनोरमा और शेखर मुस्करा रहे थे। वे अपने बजुर्गों के व्यंग्य-विनोद में रस ले रहे थे और एक दूसरे की ओर पुलकायमान दृष्टि से देख रहे थे।

हम स्टेशन से कोठी पर आए तो हमने देखा कि मनोरमादेवी कोठी के द्वार पर खड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं।

कार से उतरकर हम सबने कोठी में प्रवेश किया तो उमादेवी ने मनोरमा को अपनी अंक में भर लिया और प्यार से बोलीं, "मनोरमा! तुझे क्या पता होगा कि तेरी भी एक मौसी है ?"

मनोरमा ने मुसकराकर गरदन नीची कर ली।

शेखर ने भी उमादेवी को 'मौसीजी' सम्बोधित करके प्रणाम किया और उमादेवी ने प्यार से आगे बढ़कर उसे भी मनोरमा के साथ ही अपनी अंक में समेट लिया।

हम सबको ड्राइंग-रूम में प्रवेश किए अभी थोड़ी देर ही हुई थी कि आचार्यजी भी आ पहुँचे। बड़ी तेजी से वह लपके हुए चले आ रहे थे और उनकी चप्पलें धूल में भर गई थीं।

हम सबने खड़े होकर आचार्यजी का स्वागत किया। मैंने ध्यान-पूर्वक देखा कि राजा सुमेरसिंह कुरसी पर उस समय तक नहीं बैठे जिस समय तक आचार्यजी नहीं बैठ गए।

आचार्यजी को अकेले देखकर उमादेवी ने मुसकराकर कहा, "आचार्यजी अकेले ही पधारे हैं। हम लोग तो समझ रहे थे कि आप हम सबके व्यंग्य-विनोद की कुछ सामग्री भी साथ लाएँगे। उन महाशय को कहाँ छोड़ आये आप ?"

बात को समझने में किसी को कठिनाई नहीं हुई। राजा सुमेरसिंह हँसकर बोले, "आखिर आप लोगों ने क्या समझ लिया है हमारे 'जातीय भाई' को, जो इस प्रकार की बातें कर रहे हैं ? कल आचार्यजी ने उसे 'काठ का उल्लू' कह दिया और यह कहते हैं कि इन्होंने यह साबित भी तीन-तीन बार कर दिया कि वह काठ का उल्लू है। अब उमादेवी की बारी आई, तो उन्होंने उसे 'व्यंग्य-विनोद की सामग्री' बतला दिया। भाई आप लोग अब ज्यादती पर उतर आये हैं। अपनी

जाति का मैं इतना अपमान सहन नहीं करूंगा। इस बात का आप लोगों को ध्यान रखना चाहिए।"

ये बातें सुनकर आचार्यजी बोले, "वह आया ही नहीं कम्बख्त। मैंने लाख समझाया, परन्तु उसका साहस नहीं हुआ भैया सुमेरसिंह! और शशि भाभी के सम्मुख आते तो वह बहुत ही घबराता है। परन्तु कल मुझे सन्तोष हुआ कि उसने अपनी भूलें स्वीकार कर लीं। वह अपने कुकृत्यों पर बहुत लज्जित है। उसने बड़े मार्मिक शब्दों में अपनी गलतियाँ स्वीकार कर लीं।"

आचार्यजी के अन्तिम शब्द सुनकर राजा सुमेरसिंह ने सन्तोष की साँस ली। वह भावुकतापूर्ण स्वर में बोले, "इस मूर्ख ने अपना जीवन बरबाद कर लिया। यदि कुमार्ग पर न चलता तो क्या आज इसके जीवन की फुलवारी भी हम सब लोगों के समान ही मुसकराती हुई नहीं होती?

मैंने इस मूर्ख को अपने छोटे भाई के समान सहयोग दिया और चाहा कि यह कुमार्गों पर चलना बन्द कर दे, परन्तु सत्य यही है कि कोई आदमी किसी के समझाने से अपना मार्ग नहीं बदलता। उसका मार्ग तभी बदलता है जब वह मुसीबतों से टकराता है।

उससे उसकी भूल स्वीकार करा दी आपने, मैं इसीको एक बड़ी बात समझता हूँ। वरना रस्सी जल जाती है और उसके बल नहीं जाते। यह इसी प्रकार का व्यक्ति था। इसने कभी जीवन में अपनी भूल स्वीकार नहीं की।"

फिर कुछ ठहरकर आचार्यजी की ओर मुँह करके बोले, "इस धूर्त के इस स्वीकार करने को आचार्यजी मैं इसकी सज्जनता न मानकर आपके व्यक्तित्व का प्रभाव मानता हूँ। या उन परिस्थितियों की ठोकरों का भी यह प्रभाव हो सकता है जो इसे लगी हैं।

परन्तु फिर भी ठीक ही हुआ, जो हुआ। वह सही मार्ग पर तो आया।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर आचार्यजी बोले, "जो व्यक्ति दूसरों को ठगने का प्रयास करता है वह जीवन में स्वयं ही ठगा जाता है। दूसरों को ठगने वाला चाहे कुछ क्षणों के लिए प्रसन्न भले ही हो ले परन्तु उसकी आत्मा कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकती।

बहादुरसिंह बेचारा बहुत बुरी तरह ठगा गया

प्रारम्भ से ही इसने ऐयाशी से जो अपना सम्बन्ध जोड़ा तो इसका खर्चा बहुत बढ़ गया। जहाँ कहीं से भी रुपया इसके हाथ आया, पानी की तरह बहाया और उसकी रुपये की भूख बराबर बढ़ती गई। उसकी इस भूख ने पहले दूसरों को खाया और फिर अन्त में इसे ही खा लिया।

इसकी इसी बात ने इसे एक कलक्टर के सम्मानपूर्ण पद से बर्खास्त कराया। सरकारी नौकरी से हाथ धो बैठा और काफ़ी समय बेरोजगारी में व्यतीत करना पड़ा।

फिर मिल का मैनेजर बना, तो सेठ ने इसे ··· ······ कहते-कहते आचार्यजी को हँसी आ गई।

आचार्यजी को चुप देखकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "तो सेठजी ने इन्हें 'काठ का उल्लू' बना दिया। क्यों यही हुआ न ?"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "सचमुच यही हुआ उमा! उस सेठ ने इससे वह चोर-बाजारी के काम कराये कि जिनमें फँसकर इसे जेल तक जाना पड़ा और कठिन कारावास भुगतना पड़ा। सारी आबरू मिट्टी में मिल गई।"

"जेल तक! अरे यह क्या कह रहे हैं आप आचार्यजी ?" आश्चर्यचकित होकर राजा सुमेरसिंह ने कहा, "क्या जेल की भी हवा खानी पड़ी इस मूर्ख को ?"

"मैं वही कह रहा हूँ जो बहादुरसिंह ने मुझे बतलाया है। चोर-बाजारी भी की, जेल भी काटी और कौड़ी भी एक नहीं मिली बेचारे को। सेठ के बच्चे ने इसे पूरी तरह बेवकूफ़ बना दिया।"

जेल से छूटने पर जब बेचारा अपनी चोरी का हिस्सा सेठ से माँगने गया तो सेठ ने गेटकीपरों द्वारा इसे बाहर निकलवा दिया। वह इसे फटकारता हुआ बोला, "मिस्टर बहादुर! तुम हमारे मिल से बाहर निकल जाओ। इस प्रकार चोरी करके यहाँ से माल ले जाने वालों को हम फिर कोई नौकरी नहीं दे सकते। हमें मालूम नहीं था कि तुम सरकारी नौकरी से भी किसी रिश्वत के मामले में बर्खास्त किये जा चुके हो।"

बेचारा बहादुर लाख चिल्लाया कि वह नौकरी माँगने नहीं आया है। वह अपना वह रुपया माँगने आया है जिसके लालच में उसने चोरी की दिशा में सेठजी के कहने से पग बढ़ाया था।

परन्तु वहाँ कौन सुनने वाला था। चार गोरखा गेटकीपरों ने सेठजी की आज्ञा से बहादुरसिंह को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। और यह बेचारे खरामा-खरामा वहाँ से अपना-सा मुँह लेकर लौट आए।"

"धक्के देकर बाहर निकाल दिया," यह सुनकर राजा सुमेरसिंह का रक्त उबाल खागया। वह कड़क कर बोले, "सेठ को ऐसा नहीं करना चाहिए था आचार्यजी! सेठ ने बहादुर के साथ सरासर जुल्म किया।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर शशिप्रभा गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "सेठ को बिलकुल यही करना चाहिए था, बल्कि उस नीच के साथ इससे भी अधिक करना चाहिए था। सेठ ने कम ही किया इसके साथ।"

शशिप्रभा की बात सुनकर मैं राजा सुमेरसिंह की ओर मुँह करके बोला, "आपकी अपेक्षा बहादुरसिंह पर शशि को अधिक क्रोध है।

आप उसे चाहें भले ही क्षमा कर दें, परन्तु यह उन्हें कभी क्षमा नहीं करेंगी।"

सच यही है यतीन्द्र बाबू! वह क्षमा करने योग्य नहीं है। कोई आदमी यदि किसी के सम्पर्क में आये तो चाहे उसे वह अपना सहयोग न दे, परन्तु कम-से-कम उसके मार्ग में काँटे तो न बिछाए।

परन्तु यह ऐसा व्यक्ति है कि जो पैदा ही दूसरों के मार्गों पर काँटे बिछाने के लिए हुआ है। इसने सम्भवत: किसी की भलाई की बात जीवन में कभी सोची ही नहीं है। यह बड़ा चालाक और मक्कार आदमी है। इसे अपने पास बिठलाना बिच्छू को पालने के समान है। इसका जब अवसर लगेगा यह डंक मारने से बाज नहीं आएगा। इन्होंने भूल की जो इसे आस्तीन का सांप बनाकर दूध पिलाया।"

फिर आचार्यजी की ओर मुँह करके बोलीं, "इस व्यक्ति द्वारा अपनी भूलें स्वीकार कर लेना भी इसकी कोई गहरी चाल है। इसकी किसी भी बात का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

'हम लोग अब व्यर्थ इससे बातें करके अपना सिर-दर्द नहीं बढ़ाएँगे' कहकर शशिप्रभा तनिक गम्भीर हो गई।

फिर हमलोग सब भोजन इत्यादि के पश्चात् शेखर को पालम हवाई अड्डे पर छोड़ने गए जहाँ से एक बजे उसका जहाज चलने वाला था।

शेखर को विदा करते समय मनोरमा और शशिप्रभा के दिल भर आए, नेत्रों में आँसू भी आ गए, परन्तु मन में प्रसन्नता थी, क्योंकि शेखर एक बड़े कार्य के लिए जा रहा था।

शेखर जहाज पर खड़ा मुसकरा रहा था। उसने हाथ जोड़कर हम सबको प्रणाम किया।

जहाज अपने समय पर उड़ा और चन्द मिनटों में ही दृष्टि से ओझल हो गया। हम सब वापिस लौट आये।

[२२]

हमलोग पालम हवाई अड्डे से लौटे तो मनोरमा का मन हम सबसे अधिक उदास था। शशिप्रभा के चेहरे पर भी अभी तक मुसकराहट की रेखा नहीं खिंची थी। उनके दिल में एक घबराहट-सी थी।

यहाँ कोठी पर आए तो उमादेवी हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने हम लोगों के कोठी में प्रवेश करते ही पूछा, "विदा कर आये आप लोग बेटे को? बेटे को अपने से विदा करना भी माता-पिता के लिए कष्टप्रद चीज होती है। परन्तु विदा किए बिना भी अन्य कोई चारा नहीं है। आखिर बच्चों को हम लोगों से आगे बढ़ना है और बढ़ना है तो उन्हें विदा होना ही है और हमें पीछे रह जाना ही है।"

उमादेवी की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह मुसकराकर बोले, "इसमें कोई सन्देह नहीं उमादेवी! परन्तु विदाई होती बहुत कष्टप्रद है, आत्मा हिल उठती है।

आज जब शेखर का विमान भूमि से उठा तो मेरी आँखों के सम्मुख वह बहुत पुरानी स्मृति जाग उठी जब मैं इंगलैंड गया था। मैंने देखा था कि उस समय पिताजी के नेत्र डबडबा आए थे और माताजी की आँखों से तो टपाटप आँसू गिर रहे थे।"

उमादेवी की दृष्टि तभी मनोरमा के उदास चेहरे पर गई। उन्होंने आगे बढ़कर उसे प्यार से अपनी अंक में भर कर कहा, "शशि! अब मैं मनोरमा को तुम लोगों के साथ नहीं जाने दूँगी। यह मेरे पास ही रहेगी।

मेरे सतीश बेटे को बहन का प्यार प्राप्त नहीं हुआ। मनोरमा यहाँ रहकर अपने भाई की इस कमी को पूरा करेगी। बिना बहिन के भैया का जीवन अधूरा ही रहता है।"

सतीश चुपचाप हम सबके पास खड़ा गह सुन रहा था। उसका भोला चेहरा मनोरमा को इतना आकर्षक लगा कि उसने आगे बढ़कर उसे गोद में उठा लिया। सतीश भी मनोरमा से लिपट गया। उसने अनुभव किया कि उसके जीवन के एक महत्त्वपूर्ण अभाव की आज पूर्ति हुई।

यह देखकर आचार्यजी बोले, "उमा! तुम्हारा यह सुझाव मुझे भी बहुत प्रिय लगा। मनोरमा के यहाँ रहने से तुम्हारा भी मन कुछ और-का-और होगा।"

मनोरमा सतीश को साथ लेकर उमादेवी के कमरे में चली गई और हम सब लोग ड्राइंग-रूम में जा बैठे।

यहाँ आराम से बैठकर राजा सुमेरसिंह बोले, "आचार्यजी! यों वर मुझे अपनी पहली दो लड़कियों के लिए भी मिले, परन्तु शेखर की तुलना में किसी को नहीं रखा जा सकता। शेखर की समझदारी, निर्भीकता और स्वतन्त्र विचारों ने मेरी आत्मा को जो शान्ति प्रदान की है, वह अन्य एक ने भी नहीं की। यह बड़ा ही होनहार बच्चा है। परमात्मा इसकी आयु लगाये।

जिस समय बहादुरसिंह ने वह जातीय षड्यन्त्र रचा था तो मेरे मन में यही आया था कि मैं जात-बिरादरी की दीवारों को लात मार-कर तोड़ दूँ। मन में बहुत बड़ा तूफान उठा, परन्तु मेरी निर्बलता ने उस तूफान को दबा दिया। मेरे मस्तिष्क ने मुझसे जो कहा उसे करने का मैं साहस नहीं कर सका।

उस समय मेरे सिर पर मेरी सास थीं और वह मुझे कभी भी इस कार्य की अनुमति नहीं दे सकती थीं। इसीलिए मैंने आपसे इसका

संकेत भी नहीं किया। यदि कर बैठता तो मुझे मालूम था कि तुम मेरे इस विचार का समर्थन ही करते।

परन्तु निश्चय मैंने तभी कर लिया था कि मैं अपने एक भी बच्चे का विवाह जातीय सीमा में बाँधकर नहीं करूँगा।"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "और वैसा ही आपने किया भी। यह बड़े साहस का कार्य आपने किया भैया सुमेरसिंह ! जब जातीय बन्धनों के विध्वंस का इतिहास लिखा जाएगा तो आपका नाम इस क्रान्ति के अग्रदूतों में होगा। ये जातीयता के बंधन हमारे राष्ट्र की एकता में घातक हैं।

हमारे समाज को बड़ी तीव्र गति से इस दिशा में आगे बढ़ने की आवश्यकता है। हमें जातीय बन्धनों से मुक्त समाज का निर्माण करना है। जब तक हम यह नहीं करेंगे, हमारा समाज कभी सशक्त नहीं होगा। ये जातीय बन्धन समाज की स्वतन्त्र प्रगति को जकड़े रहेंगे और मानव को मुक्त श्वास नहीं लेने देंगे।"

"यह आपने ठीक कहा आचार्यजी ! हमारी स्वतन्त्र सरकार को निर्भीक होकर इन बन्धनों को तोड़ डालना चाहिए था। आँखें बन्द करके चलने वालों के नेत्रों को प्रकाश देना चाहिए था। राष्ट्र को सबल बनाने की दिशा में मेरे विचार से यह प्रथम पग होना चाहिए। इसके बिना राष्ट्रीय एकता कभी कायम नहीं हो सकती। मैं इन बन्धनों के विध्वंस को धार्मिक रूढ़ियों से भी राष्ट्र-निर्माण की दिशा में अधिक घातक समझता हूँ।"

तभी आचार्यजी घड़ी देखकर बोले, "अब मैं आज्ञा चाहूँगा आप सबसे। बहादुरसिंह अपने किसी मित्र से मिलने गया था, सम्भवतः आ गया होगा। पता नहीं बेचारे ने अभी तक भोजन भी किया होगा या नहीं। इस समय बड़ी कठिन परिस्थिति में से होकर गुजर रहा है वह।

आचार्यजी की भावुकता देखकर सब दंग रह गए। किसी को

इस बात का पता भी नहीं था कि आचार्यजी उस धूर्त के लिए इतने चिन्तित भी हो सकते हैं।

राजा सुमेरसिंह बोले, "तो चलिये, मैं भी चलता हूँ आपके साथ। उस कम्बख्त में मेरे पास आने तक का साहस नहीं है तो मैं ही अपने क्रोध को थूक डालता हूँ। आखिर है तो यह वही बहादुर, जिसे कभी मैंने जीवन में सहयोग दिया था और साथी बनाकर उसे अपने साथ विलायत ले गया था।"

इतना कहकर राजा सुमेरसिंह खड़े हो गए।

उनके खड़े होने पर मैं बोला, "यदि आप लोगों की बातों में मेरे साथ चलने से कोई बाधा न हो तो मैं भी आपके साथ चलूँ।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी और सुमेरसिंह एक स्वर में बोले, "अरे यह क्या कहा आपने यतीन्द्र बाबू! आपके रहने से हमारी बातों में विघ्न पड़ेगा या आनन्द आयेगा। आप हमारे जीवन में अभिन्न हो चुके हैं। आपसे हमारे जीवन का कौनसा ऐसा पहलू है जो गुप्त है? हमारे जीवन का कौनसा ऐसा रहस्य है जो आपसे छिपा है?"

यह सुनकर मैं भी सहर्ष उनके साथ हो लिया।

हम लोग चलने लगे तो शशिप्रभा मुसकराकर राजा सुमेरसिंह से बोलीं, "आप जा तो रहे हैं, परन्तु इतना ध्यान रखना कि उस धूर्त बहादुरसिंह के चक्कर में न आ जाना। मैं आपसे फिर कहे देती हूँ कि उसका आचार्यजी के सम्मुख अपनी भूलों को स्वीकार कर लेना अवश्य उसकी कोई चाल है। जवानी में इस बदमाश के आघात हम सहन करते रहे। अब बुढ़ापे में कहीं कुछ और पचड़ा न फँसा लाना अपनी जान को। अब इन चक्करों में फँसने का न तो समय ही है और न शक्ति ही।"

शशिप्रभा की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह तो केवल मुसकरा-भर लिए परन्तु आचार्यजी हँसकर बोले, "भाभी! इतनी निर्भीक होकर

भी क्या कमज़ोर बातें करने लगीं ? जंगल में सिंह और सिंहनी न हों तो गीदड़ चाहे जितना भी क्यों न चिल्लायें, उछलें-कूदें और भवकियाँ दिखलायें, परन्तु उनके रहते उनकी सामर्थ्य नहीं कि हुंकार भी निकल सके। उनका चीखना-चिल्लाना सिंह और सिंहनी की अनुपस्थिति में ही चलता है।

बहादुरसिंह को मैं जानता हूँ कि दिल का वह स्याह है, परन्तु उसकी स्याही हम पर अपना प्रभाव नहीं जमा सकती। प्रकाश के सम्मुख भला कहीं अन्धकार ठहरता है। तूफानों के सम्मुख भला कहीं झाड़-झंखाड़ खड़े रह पाते हैं ?

और आज तो उसकी दशा कुचले हुए सर्प के समान है। अपने फन को फड़फड़ा रहा है बेचारा। उसकी बदमाशी दम तोड़ चुकी है, उसकी मक्कारी कुचली जा चुकी है, उसकी अकड़ नष्ट हो गई है।"

आचार्यजी की बात को बीच में ही काट कर शशिप्रभा बोलीं, "वह कुचला हुआ सर्प सोच रहा है कि मरते-मरते भी किसी-न-किसी को डस लूँ। ऐसे कीड़ों का खेल अनुभवी व्यक्तियों को नहीं देखना चाहिए। इनसे दूर रहना ही मैं अनुभवी और योग्य व्यक्तियों के लिए उचित समझती हूँ।"

शशिप्रभा की अनुभवपूर्ण बात मेरे मन को बहुत प्रिय लगी और मैंने मुक्त कंठ से उनकी बात का समर्थन किया। मैं बोला, "शशिप्रभा ने बात ठीक ही कही है परन्तु आचार्यजी-जैसा जहर-मोहरा जब हमारे पास है तो अपने भयभीत होने का मैं कोई कारण नहीं समझता।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "मैंने बहादुरसिंह के लिए सर्प शब्द का गलत प्रयोग कर दिया भाभी ! वह सर्प नहीं रहा है अब। इस समय उसकी दशा बरसाती केंचुए के समान हो गई है। उसके दाँत तो पहले ही भैया सुमेरसिंह ने तोड़ दिए थे और जो

रहा-सहा सर्प का फन था उसे सेठ के बच्चे ने कुचल दिया है। इस समय बड़ी दयनीय दशा है बेचारे की! आप उसकी शक्ल देखेंगी तो आपका हृदय भी करुणा से भर उठेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका भी मन उसकी स्थिति पर पसीज उठेगा।"

आचार्यजी की बात सुनकर, शशिप्रभा मुसकराकर बोलीं, "आपको तो करुणा के लिए ऐसे ही पात्र मिलते हैं। दुनिया-भर के छटे बदमाशों और अपराधियों को देखकर भी आपका हृदय द्रवित हो उठता है। इसके लिए मैं क्या कह सकती हूँ। कीजिए जो कुछ भी आप करना चाहते हैं।

परन्तु मैं इतना साहस कहाँ से लाऊँ? आप इस दुनिया में सबके साथी बनकर आए हैं और मेरा क्षेत्र बहुत सीमित है। फिर कहिए मैं इस बुढ़ापे में अपना मोह और अपनी जीवन-भर की कमाई का कैसे परित्याग कर दूँ! मैं इतनी निस्वार्थ-भावना से कभी सोच ही नहीं सकूँगी जिससे आप सोचते हैं।"

शशिप्रभा की बात सुनकर आचार्यजी हँसकर बोले, "तुम चिन्ता न करो भाभी! भैया सुमेरसिंह को मैं अपने साथ ले जा रहा हूँ। इन्हें सुरक्षित आपके पास लाकर संध्या को लौटा दूँगा। इनका यदि बाल भी बाँका हुआ तो मैं हर्जे-खर्चे का जिम्मेदार हूँ।"

आचार्यजी की बात सुनकर हम सब लोग हँस पड़े। एक आनन्द और विनोद का वातावरण उपस्थित हो गया। सभी लोग इस समय बहुत प्रसन्न मुद्रा में थे।

हम लोग आचार्यजी के मकान पर पहुँचे तो देखा कि एक व्यक्ति, विशाल डीलडौल का आचार्यजी के कमरे में बैठा था। उसकी शक्ल देखकर मुझे समझने में देर नहीं लगी कि वही बहादुरसिंह है। उसका रंग काला स्याह था और दाढ़ी बढ़ी हुई थी। मालूम हो रहा था कि उसने काफी दिन से उस्तरे का प्रयोग नहीं किया था। बाल सब पक

चुके थे। सिर के बालों को शायद काफी दिन से उसने तेल के दर्शन नहीं कराए थे। उसके मस्तक पर मोटी-मोटी तीन सलवटें पड़ी हुई थीं। चिन्ता उसके चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी और उसकी मुख-मुद्रा काफी गम्भीर थी।

राजा सुमेरसिंह की सूरत देखकर उसके चेहरे का रंग सफ़ेद पड़ गया और आँखें सजग हो उठीं। उसकी आँखें सीधी सामने पड़कर राजा सुमेरसिंह की आँखों से न मिल सकीं। उसकी गरदन झुक गई। उसके बदन में बैठे-ही-बैठे एक कम्पन-सी आ गई और और पिंडलियाँ थरथराने लगीं।

उसे देखकर राजा सुमेरसिंह मुसकराकर बोले, "अरे बहादुर ! यह क्या दशा बना ली है तूने अपनी ? तू मुझसे मिलने नहीं आया, तो मैंने सोचा कि चलूँ मैं ही चलूँ तुमसे मिलने के लिए। आखिर मुझसे मिलने में तुझे क्यों संकोच हुआ ? तूने चाहे जो कुछ भी मेरे साथ किया परन्तु मैंने तो उसका कभी कुछ बुरा नहीं माना।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर बहादुरसिंह गम्भीर वाणी में गरदन नीची ही किये बोला, "आपके पास मैं कौनसा मुँह लेकर आता ? मेरा मुँह नहीं था आपके पास आने का।" मेरा सारा जीवन उन काले कारनामों से भरा पड़ा है जो मुझे आपके साथ नहीं करने चाहिए थे।"

इस पर राजा सुमेरसिंह हँसकर बोले, "अरे ! यही मुँह लेकर चला जाता जो तेरे पास है। मुँह क्या तेरा कुछ बदल गया है जो संकोच हुआ ? क्या यह वही मुँह नहीं है जिसके लिए मैंने तेरी सीट अपने साथ इंग्लैण्ड ले जाने के लिए बुक करायी थी। क्या यह वही मुँह नहीं है जिसने हमेशा ही खर्च के लिए अपने घर से आया हुआ रुपया ऐयाशी में उड़ा दिया और जिसकी फीस बराबर मैं अपने पास

से भरता रहा। इस मुँह की वे फीसें मैं न भरता रहता तो क्या यह मुँह कभी भारत में आकर शान के साथ कलक्टर के सम्मानित पद पर सुशोभित हो पाता ? क्या यह वही मुँह नहीं है जिसने सुमेरसिंह की इतनी पुरानी मंगेता पत्नी पर भी हाथ साफ करना चाहा। तेरा यह वही तो मुँह है जिसे यह सब-कुछ करने पर भी मैंने सर्वदा मुसकरा कर ही देखा है।"

राजा सुमेरसिंह की बात बीच में ही काट कर बहादुरसिंह बोला, "बस बहुत जूते लगा लिए सुमेरसिंह ! अब और शक्ति नहीं है सहन करने की। आज यह बहादुर जो तुम्हारे सामने खड़ा है उस बहादुर की धूल-मात्र है जिसके ऊपर तुमने उपकार किये और उनका बदला इसने सर्वदा अपकार से ही दिया। वह बहादुरसिंह मर चुका है। उसकी याद को अब ताजा न करो। इससे आत्मा को अथाह कष्ट होता है।

अब यह खाक प्राण-विहीन है। तुम चाहो तो इसे जी-भर कर रौंद सकते हो, इसमें प्राण नहीं हैं।"

बहादुरसिंह की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह के हृदय में करुणा का सागर लहरा उठा। वह धीमे शब्दों में बोले, "बहादुर ! जिस धूल को सुमेरसिंह ने कभी जाने या अनजाने, भूल से या सही जान कर प्यार किया है, क्या तू समझता है कि वह कभी उसे रौंदने का प्रयास करेगा ? तेरी इस निर्जीव मिट्टी को रौंद कर मुझे क्या मिलेगा ? परन्तु मुझे प्रसन्नता है कि आज इस धूल में आत्मा का प्रवेश हो गया।"

राजा सुमेरसिंह की यह बात सुनकर बहादुरसिंह के नेत्र डबडबा आए। वह निराश नेत्रों में आशा का प्रकाश लेकर राजा सुमेरसिंह की ओर देखता हुआ बोला, "तो क्या मैं यह समझ लूँ कि बड़े भाई ने मुझे क्षमा कर दिया है ? मेरे जीवन-भर के पाजीपन को अपने स्नेह जल से धोकर साफ़ कर दिया ?"

बहादुरसिंह की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह बोले, "तुम्हें मैंने अपराधी ही कब बनाया था जो आज क्षमा करने की बात तुम कह रहे हो। तुम ने जो कुछ भी अपराध किया है वह अपनी भाभी शशिप्रभा के साथ किया है। उन्हींके हृदय को तुमने सबसे अधिक ठेस पहुँचाई है। इसके लिए तुम्हें उन्हींसे क्षमा माँगनी चाहिए। मैंने तुम्हें एक बार मित्र कहा है और जिसे मित्र कह लिया उसके अपराध मैं कभी नहीं गिनता।"

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर बहादुरसिंह का मन कुछ हलका हुआ। उसे विश्वास होगया कि राजा सुमेरसिंह ने उसे क्षमा कर दिया। उसके मन पर रखा हुआ एक भारी पत्थर खिसक कर एक ओर गिर पड़ा।

ये सब बातें सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "आज अपनी आँखों से देख ना बहादुरसिंह कि यह सुमेरसिंहजी 'काठ के उल्लू' नहीं हैं। इनके अन्दर धड़कता हुआ दिल है। यह स्नेह की लहरें मारता हुआ सागर है और दया का छलकता हुआ जल। यह वह हृदय है जो दुखने पर भी मुसकराता है और कष्ट पाकर भी खिलता है। यह वह व्यक्ति है जो सौभाग्य से तुम्हें जीवन में मिला और जिसका तुम कोई उपयोग नहीं कर सके।"

"अब और लज्जित न करो नरेन्द्र ! मैंने जीवन में बड़े-बड़े कुकर्म किये हैं। उनमें मेरा जो सबसे बड़ा कुकर्म रहा है वह है भय्या सुमेरसिंह के प्रति कृतघ्नता। जिस व्यक्ति के मन में मेरे प्रति कभी कोई दुर्भावना नहीं रही, मैंने उसे सर्वदा दुर्भावनापूर्ण दृष्टि से देखने और समझने का प्रयास किया। मेरे जीवन का मार्ग गलत था और मैंने सर्वदा गलत दिशा में ही सोचा। मैंने अपने गलत मार्ग पर तुम्हें और भय्या सुमेरसिंह को भी घसीटने का असफल प्रयत्न किया परन्तु तुम दोनों के असाधारण व्यक्तित्व कभी फिसलकर मेरे कुमार्ग पर न

चल सके। मेरा यह सचमुच दुर्भाग्य ही रहा कि जो मैं तुम-जैसे साथी को पाकर भी आज इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ।

परन्तु मुझे सन्तोष है कि मुझे अपने कुकृत्यों का उचित दंड मिल गया। मुझे जो दण्ड मिला है, मैं वास्तव में इसीके योग्य था। बल्कि मुझे इससे भी कठिन दण्ड मिलना चाहिए था।"

संध्या को सब लोग जब हमारी कोठी पर आए तो बहादुरसिंह भी हमारे साथ थे।

उमादेवी और शशिप्रभा बाहर लॉन में बैठी हुई थी। उनकी दृष्टि हमारे साथ आते हुए बहादुरसिंह पर पड़ी तो वे दोनों एक साथ मुसकरा उठी, परन्तु फिर तुरन्त ही उन्होंने अपनी मुसकराहट को होंठों में दबा लिया और अपनी-अपनी मुखाकृति को तनिक गम्भीर बना लिया।

हमने कोठी के द्वार में प्रवेश किया तो उन दोनों ने खड़े होकर हमारा स्वागत किया। वे दोनों ही लॉन से आगे बढ़कर कोठी के द्वार पर आईं।

हम सब बाहर लॉन की ओर बढ़ गए। वहीं कई कुरसियाँ पड़ी थीं। उन्हीं पर जाकर हम सब लोग बैठ गए।

बहादुरसिंह ने निकट पहुँचकर हम सबके सामने आगे बढ़कर शशिप्रभा के चरण छू लिए और कातर वाणी में बोला, "भाभी गुनहगार हूँ तुम्हारा, जो चाहो दंड दे लो मुझे, उफ़ नहीं करूँगा। मैं आपके जीवन में बहुत बड़े कष्ट का कारण बना हूँ। मैंने आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है।

जवानी सभी लोगों के जीवन में आती है, परन्तु मेरे जीवन में वह एक तूफ़ान बनकर आई। उसने मेरे मानसिक संतुलन को नष्ट कर दिया और मेरे जीवन को गलत मार्ग पर लगा दिया। उसके परिणाम-स्वरूप मैं अपने साथियों की दृष्टि में भी गिर गया और अपना जीवन

तो मैंने नष्ट कर ही लिया। आज यह उस बहादुरसिंह का कंकाल आपके सम्मुख खड़ा है जिसने आपके साथ वह किया जो उसे करना नहीं चाहिए था। आप चाहें तो इस कंकाल को लात मारकर चकना-चूर कर दें, और यदि दया करें तो अपने स्नेह-जल से सींचकर मनुष्य बना दें।"

बहादुरसिंह की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, आपसे अपरिचित होने पर भी बीच में बोलने की धृष्टता कर रही हूँ, क्षमा करना इसके लिए। जीवन में जवानी का तूफ़ान बनकर आना तो कोई बुरी बात नहीं है। आचार्यजी के जीवन से अधिक बड़ा तूफ़ान लेकर क्या किसी के जीवन में जवानी आयेगी! उस तूफ़ान ने भारत की परतंत्रता को उड़ाकर सात समुद्र पार फेंक दिया। वह तूफान दुनिया के घरों को बसाने के लिए आया, उजाड़ने के लिए नहीं।

ऐसा ही यदि आपके जीवन में भी आता तो कितना अच्छा होता!"

बहादुरसिंह उमादेवी की बात सुनकर लजाते हुए बोला, "आप सच कह रही है बहन! परन्तु मेरे जीवन में जो तूफ़ान आया वह ऐसा तूफ़ान नहीं था। वह, वह था जिसने अपने को और दूसरों को उजाड़ना ही सीखा था। उसमें किसी को भी बसाने की क्षमता नहीं थी। वह अंधकार का बगूला था।"

शशिप्रभा जो अपने हृदय में बहादुरसिंह के लिए महान् घृणा लिए बैठी थीं उसकी यह दशा देखकर पिघल गईं और सद्भावनापूर्ण स्वर में बोलीं, "बहादुरसिंहजी, आपने मेरे साथ उतना बड़ा अनर्थ नहीं किया जितना बड़ा अनर्थ आपने श्रीमती मेरी के साथ किया। एक इतनी उदार और सुसभ्य विदेशी महिला का अपमान करके आपने उनका ही अपमान नहीं किया, बल्कि भारतीय सभ्यता को कलंकित किया। आप-जैसे सुशिक्षित व्यक्ति से मैं स्वप्न में भी कभी ऐसी आशा नहीं कर सकती थी कि आप ऐसी संकीर्ण मनोवृत्ति से काम लेंगे। आपने

अपने स्वार्थ के लिए परिस्थिति का जो लाभ उठाने का प्रयास किया उससे भारतीय सभ्यता को गहरी चोट लगी। यदि श्रीमती मेरी इतनी गम्भीर महिला न होतीं तो आपका वह षड्यन्त्र उनके, मेरे और राजा साहब के सर्वनाश का कारण बन जाता !"

शशिप्रभा की बात सुनकर बहादुरसिंह की गरदन झुक गई और सभी ने देखा कि उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी। उसकी हिचकियाँ बँध गईं थीं।

यह देखकर आचार्यजी बोले, "शशि भाभी ठीक कह रही हैं बहादुर ! तुम्हें श्रीमती मेरी के सम्मुख क्षमा माँगनी चाहिए। मेरा मत है कि तुम कल राजा सुमेरसिंह के साथ सहसपुर चले जाओ और श्रीमती मेरी से क्षमा याचना कर आओ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह देवी तुम्हें मुसकराकर क्षमा प्रदान करेंगी। मैं श्रीमती मेरी के स्वभाव से खूब परिचित हूँ।"

बहादुरसिंह ने अनुभव किया कि वास्तव में उनसे श्रीमती मेरी के प्रति अपराध हुआ है और वह दूसरे दिन राजा सुमेरसिंह के साथ सहसपुर जाने को उद्यत हो गया। बहादुरसिंह के इस निश्चय ने हम सभी के मनों में उसके विषय में नई विचार-धारा को संचारित किया।

राजा सुमेरसिंह बहादुरसिंह की विनम्र स्वीकृति को सुनकर पानी-पानी हो गए। उन्होंने दर्द-भरे स्वर में कहा, "बहादुर ! तुम्हें अब समझ आई जब जीवन का सारा मूल्यवान समय नष्ट कर दिया।" कितना अच्छा होता यदि तुम कुछ पहले समझ पाते।"

और फिर कृतज्ञतापूर्ण स्वर में आचार्यजी की ओर देखकर बोले, "आचार्यजी ! आपने हम लोगों के जीवन-नाटक को सुखान्त बना दिया। अन्त में बहादुर को मिलाकर तुमने मेरे हृदय की उस जलन को भी दूर कर दिया जो किसी पर व्यक्त न करने पर भी मेरे हृदय में राख के नीचे दबी चिंगारी के समान सर्वदा दहकती रहती थी। मैं

लाख प्रयास करने पर भी आज तक उसे बुझा नहीं पाया था। वह आज शान्त हो गई।

किसी व्यक्ति को यदि मैंने जीवन में तनिक भी स्नेह किया है तो उसको कुमार्ग पर चलते देखकर मेरी आत्मा को महान् कष्ट होता है और उससे भी अधिक कष्ट मुझे उस समय होता है जब मैं उस कुमार्ग पर चलने से रोकने में अपने को असमर्थ पाता हूँ।

बहादुरसिंह ने अपने भ्रष्ट चरित्र से अपना सर्वनाश कर लिया, हमारी कोई हानि यह नहीं कर सका, परन्तु आप सच जानें कि मेरे हृदय में इसकी बड़ी पीड़ा थी। एक ऐसी चोट ने मेरे जीवन में स्थान बना लिया था जो कभी भी इसकी याद आने पर कसक उठती थी और मेरे जीवन में एक बेचैनी पैदा कर देती थी।

मैं इसे तभी से स्नेह करता हूँ जब से यह मेरे साथ पढ़ता था। बड़ी ही कुशाग्र बुद्धि का था यह। क्लास में सर्वदा प्रथम आता था। बहुत कम पढ़ता था परन्तु कमाल की मेमोरी पाई थी इसने।

मैं इसे स्नेह करता था इसलिए इसकी इतनी हरकतों के पश्चात् भी मैं कभी इसे घृणा नहीं कर सका। चाहने पर भी नहीं कर सका। इसके दुर्व्यवहारों की ठोकरें मेरे उस स्नेह को कभी विचलित नहीं कर पाईं।

मुझे हार्दिक सन्तोष है कि आखिर आप इसे सही मार्ग पर ले आए। मैं आपका आज हृदय से कृतज्ञ हूँ। आपने मेरे इस बुढ़ापे में मुझे असीम शान्ति प्रदान की है।

शशि ने ठीक ही कहा था कि आप 'सबके साथी' हैं। आपने हम सब और पूरे राष्ट्र के जीवन में सहयोग और सद्भावना संचारित की है।

राजा सुमेरसिंह की बात सुनकर बहादुरसिंह के नेत्र पसीज उठे और

सबने देखा कि चन्द क्षणों में ही उनकी आँखों से टपाटप आँसू बरस पड़े।

बहादुरसिंह की यह दशा देखकर राजा सुमेरसिंह अपने को न रोक सके और उन्होंने उठकर उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।

वह बोले, "बहादुर! तुमसे मुझे बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। आचार्यजी की भाँति मैं सम्पूर्ण राष्ट्र और मानव-मात्र की समस्याओं को अपने छोटे से हृदय में समेटकर नहीं चल सकता था और न ही कभी इतने व्यापक दृष्टिकोण से मैंने सोचने का ही प्रयास किया था परन्तु अपनी जाति की कुरीतियों के अन्दर मैंने झाँक कर अवश्य देखा था और जब मैंने भारत से इंग्लैण्ड के लिए तुम्हारे साथ प्रस्थान किया था तो यही धारणा लेकर चला था कि मैं और तुम वहाँ से जब उच्च शिक्षा प्राप्त करके देश लौटेंगे तो अपनी जाति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करेंगे।

लन्दन पहुँचकर मैं आचार्यजी के सम्पर्क में आया तो मुझे अपना वह विचार एक कूपमंडूक की विचार-धारा के ही समान प्रतीत हुआ। आपके विचारों ने मुझे इतना प्रभावित किया कि जातीय भावना मेरे मस्तिष्क से कतई निकल गई। मैंने फिर कभी उसके विषय में सोचा भी नहीं।

वहाँ जाकर तुमने अपने जीवन का जो मार्ग बनाया वह मेरे हृदय में काँटे की भाँति खटका और मैंने तुम्हें उस मार्ग से हटाने का भी प्रयास किया। मैं तुम्हारे साथ रेस-कोर्स मेंभी कई बार गया, वेश्याओं के यहाँ भी गया परन्तु गया सर्वदा केवल इसीलिए कि यदि तुम किसी गहरी खंदक में गिर पड़ो तो तुम्हें निकाल सकूँ और इनके कुपरिणामों की ओर तुम्हारा ध्यान आकृष्ट कर सकूँ परन्तु तुमने उसे सर्वदा ग़लत ही समझा। तुमने समझा कि तुम सुमेरसिंह को अपने मार्ग पर ले जाने में सफलता प्राप्त कर रहे हो।"

राजा सुमेरसिंह की यह बात सुनकर आचार्यजी के चेहरे पर मुसकराहट खेल उठी और उन्हें अपने वे सभी क्षण स्मरण हो आए जब-जब उन्होंने इस तथ्य को बहादुरसिंह के सम्मुख स्पष्ट करने का प्रयास किया था।

आचार्यजी के होंठों पर खेलती हुई मुसकराहट को देखकर बहादुर-सिंह बोला, "आचार्यजी ! आपका कहा गया एक-एक शब्द मुझे आज लग रहा है कि आप मुझे आज अपनी भूल की ओर से सचेत कर रहे हैं। काश, मैं उसी समय आपके शब्दों की गहराई को समझ पाता तो आज यह दुर्भाग्यपूर्ण दिन मुझे जीवन में न देखना पड़ता !"

बहादुरसिंह की बात सुनकर आचार्यजी हँसकर बोले, "उस समय तुम नहीं समझ सकते थे बहादुरसिंह ! और इसीलिए मैंने तुम्हें कभी समझाने का प्रयास नहीं किया।

उस समय तुम्हारे ऊपर जवानी और ऐयाशी का वह नशा छाया हुआ था कि जो मनुष्य को पागल बना देता है। उसकी आँखें बन्द कर देता है और उसके नेत्रों पर परदा डाल देता है।

उस समय तुम्हें अपनी बुद्धि पर अभिमान था, अपनी चतुराई और चालाकी के सामने मेरे शब्द मक्खियों की भिनभिनाहट के समान थे। उनका कोई मूल्य नहीं था इसीलिए मैं तुम्हारे कानों पर अधिक भिन-भिनाया नहीं।

जिस दिन तुमने भाई सुमेरसिंह के लिए 'काठ के उल्लू' शब्द का प्रयोग किया तो तुम अनुभव नहीं कर सकते कि मेरे हृदय को कितनी पीड़ा पहुँची और मैंने तुम्हारी सूरत देखकर उसपर केवल इतना ही देखा कि तुम मनुष्य नहीं दानव बन गए हो। तुम उसीको पी जाने की बात सोच रहे हो जो तुम्हारे जीवन का अमृत है जो व्यक्ति स्वयं अपने ही जीवन के अमृत को पी जाने की बात सोच रहा हो, उससे क्या कहा जाए ? परन्तु मैंने तब भी जब-जब मुझे अवसर मिला तुमसे कुछ-न-कुछ

कहने की मूर्खता की । मैं जानता था कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह रेगिस्तान के विशालकाय टीले पर पानी की दो बूँदे गिरा कर नष्ट कर देने के समान है, परन्तु फिर भी वह सब कहा जो तुम्हारे हित में था । परिणाम उसका कुछ नहीं निकला परन्तु मेरे मन और हृदय को शान्ति मिली । मैंने यही समझा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया । मैं जो चाहता था वह न कर सका इसका दर्द मेरे दिल में अवश्य बना रहा, परन्तु लाचारी थी । करता भी क्या ? तुम्हारी बुद्धि की ठनक से टकराने की उस समय न तो मुझ में क्षमता ही थी और न मैंने टकराना उचित ही समझा ।"

इन बातों को उमादेवी और शशिप्रभा बड़े ध्यान से सुन रही थीं । मैंने देखा कि तभी उमादेवी के चेहरे पर अचानक ही मुसकराहट छिटक उठी और वह धीरे-धीरे खिलखिलाकर हँसने में परिवर्तित हो गई ।

हम सभी लोग उमादेवी के चेहरे की ओर देखने लगे । उमादेवी खूब हँसीं और उनकी हँसी को देखकर आचार्यजी बोले, "उमा ! तुम इतने जोर से हँसीं हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम कुछ कहना चाहती हो । शायद हम लोगों की बातों पर तुम अब अपना अंतिम निर्णय देकर विराम लगा देना चाहती हो । यदि यही बात है तो तुम सचमुच विराम लगा दो । इस अध्याय को यहीं समाप्त कर दो जिससे जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हो सके ।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी बोली, "मैं हँसी भी परन्तु अब मुझे क्रोध आ रहा है ।"

"क्रोध आ रहा है ? आखिर किस पर ?" आचार्यजी ने अपने नेत्र उमादेवी के चेहरे पर गड़ाकर पूछा ।

इस समय हम सब उमादेवी के चेहरे पर अपने नेत्र टिकाये हुए थे । मैंने देखा कि बहादुरसिंह बहुत ही विह्वल दृष्टि से उमादेवी की

ओर देख रहे थे। उनकी सूरत को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो करुणा की साक्षात प्रतिमा सामने खड़ी है।

उमादेवी गम्भीर मुख-मुद्रा बनाकर बोलीं, "आचार्यजी ! मुझे क्रोध आ रहा है उस सेठ के बच्चे पर कि जिसने अब बुढ़ापे में आकर शक्ल दिखलाई आप लोगों को। उस गधे को आप लोगों के साथ ही इंग्लैण्ड जाना चाहिए था। यदि वह आप लोगों के साथ ही विलायत पढ़ने गया होता तो आज जो दिन भाई बहादुरसिंह के जीवन में आया है वह आज से न जाने कितने दिन पूर्व आगया होता !"

उमादेवी की बात सुनकर आजार्यजी के साथ-साथ सब लोग ठहाका मारकर हँस पड़े।

मैंने देखा कि इस समय बहादुरसिंह भी मुसकरा रहे थे।

आचार्यजी बोले, "उमादेवी ! उस सेठ के बच्चे को विलायत जाकर पढ़ने में अपना समय नष्ट करने की भला क्या आवश्यकता थी जब वह बिना पढ़ा-लिखा ही हम पढ़े-लिखों को 'काठ का उल्लू' बनाने की क्षमता अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में विधाता के यहाँ से लेकर आया है।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं आचार्यजी !" बहादुरसिंह मुसकराता हुआ बोला। काला अक्षर उस धूर्त्त के लिए भैंस के बराबर है परन्तु कम्बख्त कमाल की बातें सोचता है। आखिर मूर्ख बनाकर मुझे जेल की हवा खिला ही दी उस बदमाश ने।

परन्तु अच्छा ही हुआ। यह ठोकर जीवन में ऐसी लगी है कि इसने मेरा जीवन ही बदल दिया। इसने मेरे मस्तिष्क में गुँथी हुई उलझनों को साफ़ करके मुझे सही-को-सही और गलत-को-गलत समझने और स्वीकार करने के योग्य बना दिया।"

इस पर उमादेवी मुसकराकर बोलीं; "यदि इतनी बड़ी देन आपको

सेठजी से प्राप्त हुई है तो मैं समझती हूँ कि मुझे अब उन पर क्रोध करने का कोई कारण नहीं रहा।

आचार्यजी और जीजाजी को उनका कृतज्ञ ही होना चाहिए कि उन्होंने इनके एक भटके हुए साथी को जीवन में एक बार फिर इनसे लाकर मिला दिया।"

राजा सुमेरसिंहजी मुसकराकर बोले, "इसमें कोई संदेह नहीं उमा! मैं तो वास्तव में सेठजी का कृतज्ञ हूँ और उनका आभार मानता हूँ।"

फिर बहुत रात गए तक बहुत-सी मीठी-मीठी बातें होती रहीं।

[२३]

दूसरे दिन राजा सुमेरसिंह अपनी रियासत सहसपुर को जाने की तैयारी में थे।

मनोरमा को उमादेवी ने शशिप्रभा के साथ नहीं जाने दिया और सतीश ने कल से आज तक उसमें इतना स्नेह पैदा कर लिया कि उसे छोड़कर वह जा ही नहीं सकीं।

उमादेवी उनके चलते समय बोलीं, "शशि! तुम्हारे आने से पूर्व क्या कभी मैं स्वप्न में भी यह सोच पाई थी कि जीवन में मैं फिर कभी बाँकीपुर को देख सकूँगी? अपने जीवन के बाल-काल के उन क्रीड़ा-स्थलों को देख सकूँगी जिनकी हर दिशा में हम दोनों की उछल-कूद के चिन्ह कभी अंकित हुए थे।

पता नहीं उस विद्यालय की आज क्या दशा है जिसे पिताजी ने आपके पिताजी के साथ प्रयाग से आकर संचालित किया था?"

विद्यालय की बात सुनकर शशिप्रभा मुसकराकर बोलीं, "उमा ! वह विद्यालय आज बहुत बड़े डिग्री कॉलेज के रूप में चल रहा है और तुम्हें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि इस समय उस विद्यालय का संचालन भी श्रीमती मेरी के ही संरक्षण में हो रहा है। यह विद्यालय सहसपुर और बाँकीपुर दोनों रियासतों में सबसे बड़ा है। उसमें इस समय कई हज़ार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश में यह खेती का सबसे बड़ा विद्यालय है और उसमें कई उद्योग-धन्धों की भी कक्षाए हैं।"

शशिप्रभा के मुख से अपने पिता द्वारा लगाये गए उस नन्हे से पौधे का यह रूप-वर्णन सुनकर उमादेवी के चेहरे पर मैंने देखा कि एक ऐसे संतोष और आनन्द की आभा बिखर गई कि जिसे समझ लेना मेरे लिए तनिक भी कठिन न रहा।

उमादेवी बोलीं, "शशि बहिन ! आपकी इस सूचना ने अपार आनन्द की विधि बटोर कर मेरे हृदय-कोष में भर दी।

इस समय मन हो रहा है कि मैं पर लगाकर उड़ूँ और सहसपुर पहुँच जाऊँ। यदि मेरा स्वास्थ्य आज्ञा देता तो मैं भी आपके साथ चलती और आपको साथ लेकर बाँकीपुर जाती। परन्तु विश्वास रखिए कि मैं तनिक ही स्वस्थ होने पर वहाँ आऊँगी और उस पवित्र पावन भूमि के दर्शन करूँगी जिसकी जलवायु में पलकर इस उमा ने जीवन में प्रवेश किया।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी आचार्यजी और बहादुरसिंहजी भी आ पधारे।

बहादुरसिंह राजा सुमेरसिंह की ओर देखकर बोले, "मैं उद्यत हूँ चलने के लिए भैया सुमेरसिंह ! मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं श्रीमती मेरी के चरण छूकर उनसे अपनी धृष्टता की क्षमा-याचना करूँगा। मुझे विश्वास है कि वह मुझे अवश्य ही क्षमा कर देंगी।"

बहादुरसिंह की बात सुनकर उमादेवी मुसकराकर बोलीं, "स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक उदार होती हैं बहादुर भय्या ! श्रीमती मेरी के विषय में मैंने जो-कुछ बहिन शशिप्रभा से सुना है, उसके आधार पर मैं दृढ़ निश्चय के साथ कह सकती हूँ कि वह आपको अवश्य अपना स्नेह प्रदान करेंगी।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर मुझसे बोले, "देखा आपने यतीन्द्र बाबू ? उमा ने इस समय पूरी पुरुष-जाति पर चोट कर दी। क्या आप उमादेवी की इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक उदार होती हैं ? मैं ऐसा नहीं मानता। होती होंगी किसी सौभाग्यशाली पुरुष के प्रति परन्तु मेरा अनुभव तो इसके विपरीत ही है और मेरे मित्र बहादुरसिंह का भी यही अनुभव होगा।

उदाहरण-स्वरूप आप मेरे और मित्र बहादुरसिंह के ही जीवन को ले लीजिए। क्या किसी स्त्री ने हमारे प्रति कभी उदारता बरतने की कृपा की ? इसीके परिणाम-स्वरूप मित्र बहादुरसिंह का जीवन कभी सरस नहीं हो सका। रही मेरी बात सो जाने दो उसकी बात।" इतना कहकर आचार्यजी क्षणिक मौन के पश्चात् बोले, "भय्या सुमेरसिंह की बात मैं नहीं कहता। वह सौभाग्यशाली निकले इस मामले में।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी कुछ लजा-सी गईं और शशिप्रभा मुसकराकर रह गईं।

उमादेवी मेरी ओर देखकर बोलीं, 'सुनी आपने आचार्यजी की बात! यों बातें आचार्यजी सम्पूर्ण राष्ट्र और मानव-मात्र की करते हैं परन्तु दृष्टान्त देने के लिए आपके पास केवल अपने-आप स्वयं रहते हैं या अब भविष्य के लिए भय्या बहादुरसिंहजी मिल गए हैं। परन्तु खैर ! एक से दो तो हो गए और दो से समाज की कल्पना हो सकती है परन्तु

यह कल्पना अधूरी ही रहेगी क्योंकि इसमें मानव स्त्री-रूप का तो कहीं प्रवेश है ही नहीं।"

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुसकराकर बोले, "यही तो मैं भी कह रहा हूँ उमादेवी ! कि हमारे प्रति किसी देवी ने उदारता बरती ही नहीं। अभावपूर्ण जीवन सम्पूर्ण की कल्पना करे भी क्या ?"

आचार्यजी की बात सुनकर मैंने देखा कि उमादेवी का श्वास तीव्र गति के साथ चलने लगा और चेहरे पर लाली दौड़ गई। वह आचार्यजी के चेहरे पर दृष्टि पसारकर बोलीं, "आपके जीवन का अभाव स्वनिर्मित है और स्वनिर्मित अभाव, अभाव नहीं होता बल्कि अभाव की पूर्ति ही होती है। हाँ, भय्या बहादुरसिंहजी के विषय में यह बात अवश्य सत्य है। यदि आपके जीवन में कोई दयावान स्त्री प्रवेश पा जाती तो आपको सेठजी से कदापि टकराना न पड़ता। आपका जीवन भी एक पुष्पों से सुगन्धित वाटिका बनकर महक उठता। उसमें भी भाँति-भाँति के सुन्दर पुष्प खिलते और वे अपनी गन्ध से भय्या के हृदय को भर देते, उसकी दुर्गन्ध को वहाँ से निकालकर बाहर फेंक देते।

मेरे विचार से नारी का अभाव ही इनके जीवन की सबसे बड़ी विषमता रही है और इसी अभाव की पूर्ति के लिए यह जीवन भर छटपटाते रहे हैं, परन्तु वह मिल नहीं सकी। इसका कारण भी स्पष्ट है कि आपने स्त्री की स्वतन्त्र रूप से आराधना नहीं की।"

"उमा बहिन ठीक कह रही हैं आचार्यजी !" बहादुरसिंहजी गम्भीरतापूर्वक बोले।

उनकी बात सुनकर आचार्यजी खिलखिलाकर हँस पड़े और बहादुरसिंहजी के कन्धे पकड़कर बोले, "जीवन में कभी किसी बात को स्वीकार न करने वाले बहादुर ! तुझे आज क्या हो गया ? मालूम

देता है अब सभी बातों को स्वीकार करने का अब तुमने निश्चय कर लिया है।"

और फिर शशिप्रभा की ओर देखकर बोले, "भाभी ! सच जानो, तुम्हारे प्रति बहादुरसिंह के हृदय में असीम करुणा का सागर लहराता है। तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने की उत्कट इच्छा इनके मन में अवश्य थी और भय्या सुमेरसिंह से मात खाकर इन्हें नीचा दिखलाने की भावना भी थी परन्तु जहाँ तक व्यक्तिगत सम्बन्ध है, इनके मन में कोमल स्थान ही सर्वदा बना।"

आचार्यजी की बात सुनकर शशिप्रभा तनिक लजा गईं परन्तु तुरंत ही अपने को सँभालकर मुसकराती हुई बोलीं, "आप कुछ भी कह सकते हैं आचार्यजी ! परन्तु मैं तो इनके जीवन के अभाव में आपका असहयोग प्रत्यक्ष रूप से देख रही हूँ। यदि मैं यह कठोर शब्द कहने की भी धृष्टता करूँ कि आपने इनके साथ मित्रता निभाने में संकोच किया तो आशा है आप बुरा नहीं मानेंगे। आप इनकी सहायता करते तो शायद कुछ सफलता के आसार इन्हें दिखलाई देने ही लगते।"

शशिप्रभा की बात सुनकर राजा सुमेरसिंह खिलखिलाकर हँसते हुए उछल पड़े और मुक्त कंठ से बोले, "भाई बहुत खूब ! शशि तुमने आज आचार्यजी को बहुत सही उत्तर दिया।"

शशिप्रभा फिर मुसकराकर बोलीं, "परन्तु आप मित्रता निभाते भी क्यों ? आपका स्वार्थ तो इसीमें था कि समस्त संसार आप-जैसा ही बना रहे, इसीलिए आपने बहादुरसिंहजी का कभी साथ नहीं दिया।'

शशिप्रभा की बात सुनकर बहादुरसिंह मुसकराकर बोले, "यह बात नहीं है भाभी ! भूल मेरी ही रही। मैंने पूज्य भाभी को पत्नी के रूप में देखने का गलत प्रयास किया। मुझे ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए था।

सत्य यही है कि मैं आपके रूप और गुणों की अपेक्षा आपकी सम्पत्ति की ओर अधिक लालायित था। मेरा लक्ष उसीको प्राप्त करना था और आपको मैं माध्यम बनाना चाहता था।"

बहादुरसिंहजी की स्पष्टवादिता का हम सभी लोगों पर बहुत बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। मैं कल से उनके शब्द-शब्द को बड़ी ही गम्भीरता से सुन रहा था और उनके जीवन में झाँकने का प्रयास कर रहा था। मैं अनुभव कर रहा था कि निश्चित रूप से उनके जीवन और विचार की धारा बदल रही थी। सच्ची बात को कहने और शान्ति के साथ सुनने की क्षमता उनमें आ चुकी थी।

तभी राजा सुमेरसिंहजी अपनी घड़ी जेब से निकालकर उमादेवी की ओर देखते हुए बोले, "अच्छा उमा! अब आज्ञा चाहेंगे हमलोग। हमारी गाड़ी समय का होगया।

यहाँ की इस चहल-पहल को छोड़कर जाने का तो मन नहीं हो रहा परन्तु जाना आज निश्चित ही है। हमलोग यदि आज नहीं जाएँगे तो श्रीमती मेरी बहुत परेशान हो उठेंगी।"

चलते समय मनोरमा और सतीश को राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा ने बारी-बारी से अपना स्नेह प्रदान किया।

उमादेवी का मन शशिप्रभा की बिदायगी पर कुछ खिन्न-सा हो उठा।

यह देखकर शशिप्रभा चलते-चलते तनिक ठिठककर बोलीं, "उमा! तुम भूल न जाना कि तुम्हें बहुत शीघ्र स्वस्थ होकर सहसपुर आना है। वहाँ से हमलोग बाँकीपुर चलेंगे।

बाँकीपुर का तुम्हारा वह बँगला, तुम चलकर देखोगी कि आज तक अपनी उसी शोभा और आभा से परिपूर्ण है जैसा तुम उसे छोड़ कर आई थीं। उसके बगीचे में जो गुलाब की क्यारियाँ मैंने लगाई थीं, वे आज भी ज्यों-की-त्यों खिली हुई तुम्हें मिलेंगी और माली का लड़का

रमला जो हमारे माली ने तुम्हारी बगिया की देखभाल को भेजा था वह आज भी वहीं पर रहता है। बड़ा याद करता है वह तुम्हें। मैं जब कभी भी बाँकीपुर जाती हूँ तो बड़ी ही उत्सुकता से तुम्हारे विषय में पूछने आता है और जब यह सुनता है कि तुम्हारा कहीं पता नहीं चला, तो मन मारकर रह जाता है। सच जानो उमा, वह रूँआसा हो उठता है यह सुनकर!

इस बार जब उसे तुम्हारी खोज-खबर मिलने की सूचना मिलेगी तो हर्ष से नाच उठेगा।"

उमादेवी के नेत्रों के सम्मुख जीवन की प्राचीन स्मृति की साक्षात् तस्वीर खड़ी कर दी शशिप्रभा के इन वाक्यों ने। वह बोलीं, "तो रमला अभी वहीं पर बना हुआ है?"

तुम्हारी उस कोठी में मैंने तुम्हारे नाम का एक पुस्तकालय खुलवा दिया है। कोठी और बागीचे की पूरी देखभाल रमला के ही आधीन है।

तभी राजा सुमेरसिंहजी बोले, "प्रभा! अब देर करने से ट्रेन नहीं मिलेगी।"

वे लोग चल दिये एक ताँगे में बैठकर। इच्छा मेरी भी थी उनके साथ स्टेशन तक जाने की परन्तु ताँगे वाले ने पाँच सवारियाँ बिठलाने से इन्कार कर दिया।

उन सबके चले जाने पर हम लोग अन्दर कमरे में चले आए। उमादेवी के मन से शशिप्रभा के विछोह के भारीपन को दूर करने के लिए मैंने बहादुरसिंह को लेकर बात प्रारम्भ की, "उमा! बहादुरसिंह के विषय में तुमने क्या सोचा? क्या यह सचमुच जीवन की सीधी राह पर आ गया है?"

मेरी बात सुनकर उमादेवी मुसकरा दीं और कुछ देर तक मुसकराती ही रहीं मेरे चेहरे की गम्भीरता को देखकर।

मैंने अपना प्रश्न फिर दोहराया तो वह बोलीं, "अभी कुछ कहा नहीं जा सकता इस व्यक्ति के विषय में। मजबूरी का रास्ता आदमी का अपना रास्ता नहीं होता ; वह तो परिस्थितियों का रास्ता है।

इस व्यक्ति का जीवन जिन धाराओं से होकर बहता चला आ रहा है, उनमें पड़कर यदि यह उन्हें पार करने की क्षमता अपने अन्दर बना सका तो मार्ग बदल सकता है और यदि यह दुबारा उनमें बह गया तो बह गया।

भावुकता में आकर शशि बहिन और राजा सुमेरसिंहजी इन्हें अपने साथ सहसपुर ले गए हैं, परन्तु मैं इसे उचित नहीं समझती।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

उमादेवी ने मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने भी उसे दोहराना उचित नहीं समझा।

हम दोनों बैठे बहुत देर तक बातें करते रहे और प्रतीक्षा करते रहे आचार्यजी के स्टेशन से लौटने की।

तभी मेरा ध्यान मनोरमा और सतीश की ओर गया। दृष्टि बाहर बागीचे में गई तो क्या देखा कि दोनों आनन्दपूर्वक बेंच पर बैठे गप्पें लगा रहे थे।

मैं उन्हें देखकर बोला, "मनोरमा बड़ी भोली लड़की है। तुम्हारे एक बार कहने पर ही उसने शशिप्रभा के साथ जाने का नाम तक नहीं लिया।"

कहते-कहते मेरे सम्मुख शशिप्रभा और राजा सुमेरसिंह की शक्लें आ गईं। मैं बोला, "उमा ! तुम्हारी सहेली शशि और उनके पति से भेंट करके मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। दोनों ही व्यक्ति सज्जनता के प्रतीक हैं।"

मनोरमा बोली, "सोने को सुहागा मिल गया। शशि को राजा

सुमेरसिंह-जैसे ही साथी की आवश्यकता थी। राजा साहब वास्तव में शशि की कल्पना के प्रतीक हैं।"

तभी मेरी दृष्टि कोठी से बाहर दूर तक लम्बी फैली सड़क पर गई तो क्या देखा कि आचार्यजी तथा बहादुरसिंह खरामा-खरामा हमारी कोठी की ओर लपके चले आ रहे थे।

आचार्यजी के साथ बहादुरसिंह को देखकर मैं आश्चर्य-चकित बोला, "उमा, आचार्यजी आ रहे हैं और उनके साथ बहादुरसिंहजी भी हैं।"

मेरी बात सुनकर उमा हलके-से मुसकरा दीं।

मैं उमा के मुसकराने का आशय नहीं समझा। मैंने कहा, "बहादुरसिंह तो राजा साहब और शशिप्रभा के साथ जाने वाले थे। लौट कैसे आए?"

उमा उसी तरह मुसकराती हुई बोलीं, "आचार्यजी को समझने में अभी आपको समय लगेगा। मैं इनके निकटतम सम्पर्क में रहते हुए लगभग पूरा ही जीवन बिता चुकी हूँ, तब भी कभी-कभी यह मेरे लिए रहस्य बन जाते हैं। बातें उनकी बहुत सरल और सीधी-सादी प्रतीत होने पर भी कभी-कभी इतनी तिरछी हो जाती हैं कि मस्तिष्क में उलझनें पैदा कर देती हैं।

बहादुरसिंह चालाकी में चाहे अपने-आपको कुछ भी समझ बैठा हो परन्तु वह अपने को शायद उतना नहीं समझता जितना आचार्यजी उसे समझते हैं।

मैं सोचती ही रही कि मुझे शशिप्रभा और जीजाजी से बहादुरसिंह को अपने साथ ले जाने के लिए कोई बहाना बनाकर मना कर देना चाहिए, परन्तु कह नहीं पाई उनसे। आचार्यजी ने कहा कुछ भी नहीं और कर वही दिया जो मैं करना चाहती थी। कह नहीं सकती कि मेरे मन की बात को आचार्यजी कैसे पहचान जाते हैं। मैंने यह

बात जीवन में अनेक बार देखी है, परन्तु इसका रहस्य मैं आज तक कभी समझ नहीं पाई।

बहादुरसिंह-जैसे धूर्त व्यक्ति का इस समय राजा साहब और शशिप्रभा के साथ जाना अनिष्टकारी हो सकता था।"

उमा के मुसकराने का आशय समझकर मैं बोला, "आचार्यजी ने यह कार्य बहुत ही समझदारी का किया है। ऐसे व्यक्ति के मन में क्या विष घुला हुआ हो सकता है, इसका सही अनुमान लगाना कठिन है। इस समय यह चोट खाये हुए सर्प की भाँति फन फड़फड़ा रहा है। राजा सुमेरसिंह-जैसे सरल व्यक्ति के साथ सचमुच इसे नहीं जाने देना चाहिए था।"

[२४]

आचार्यजी ने बहादुरसिंह के साथ बैठक में प्रवेश किया तो हम दोनों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया।

उमादेवी बोलीं, "शशि और राजा साहब चले गए तो आज लग रहा है कि मानो इस घर में चन्द दिन पूर्व जो आनन्द का वैभव आकर भर गया था वह एकदम रिक्त हो गया। घर सूना-सूना-सा लग रहा है और मन नहीं लग रहा तनिक भी।"

आचार्यजी मुसकराकर बोले, "राजा साहब और शशि को भी अन्त समय तक, जब तक ट्रेन नहीं छूट गई तुम लोगों की याद सताती रही। राजा साहब तो उमा तुम पर ऐसे मुग्ध हो उठे हैं कि जिसका कुछ ठीक ही नहीं। अन्त समय तक तुम्हारी ही प्रशंसा के पुल बाँधते रहे और यतीन्द्र भय्या की सज्जनता ने उन्हें बहुत प्रभावित किया।

गाड़ी छूटने लगी तो बोले, "आचार्यजी हम लोग जा तो अवश्य रहे हैं परन्तु सच जानिए कि हमारी आत्माएँ उमादेवी और यतीन्द्र बाबू के साथ ही बँधी हुई हैं।"

शशि बोलीं, "उमा से कह देना कि तनिक स्वस्थ होते ही सहसपुर आये और कुछ दिन मेरे पास वहीं रहे। यहाँ शहर के वायुमंडल में रहकर उसका स्वास्थ्य उतना शीघ्र नहीं सुधर सकता जितना सहसपुर में सम्भव है।

सतीश और मनोरमा को प्यार कर देना।

जाने कहाँ चले गए ये दोनों बच्चे ?"

मैंने सामने बागीचे की ओर संकेत करके उन्हें दिखलाते हुए कहा, "वे बैठे हैं दोनों। तब से वहीं खेल रहे हैं।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी बोले, "मनोरमा बड़ी भोली बच्ची है। यों राजा साहब के सभी बच्चे सुसभ्य और सरल प्रकृति के हैं परन्तु मनोरमा सबसे अच्छे स्वभाव की है। यह छोटे बच्चों में घुल-मिलकर बिलकुल बच्ची बन जाती है।"

तभी मेरी दृष्टि बहादुरसिंहजी की ओर गई और मैंने पूछा, "आपने सहसपुर जाने का विचार स्थगित कर दिया क्या ? चले जाते तो अच्छा ही रहता। कुछ दिन राजा साहब, शशिप्रभा और श्रीमती मेरी के साथ रह आते तो पारिस्परिक मनोमालिन्य धुलकर साफ हो जाता।"

मेरी बात सुनकर आचार्यजी गम्भीर मुख-मुद्रा बनाकर बोले, "मनोमालिन्य अब नहीं रहा यतीन्द्र बाबू ! बहादुरसिंह ने अब निश्चय कर लिया है कि वह अपना शेष जीवन समाज-सेवा के अर्पित कर देंगे। मैंने सोचा कि फिर क्यों इनका समय इन्हें राजा साहब के साथ भेज-कर नष्ट किया जाए। समय बहुत ही तीव्र गति के साथ दौड़ रहा है।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी आचार्यजी से भी अधिक गम्भीर मुख-मुद्रा बनाकर बोलीं, "इसमें कोई सन्देह नहीं आचार्यजी ! समय की गति आज बहुत तीव्र है। जब समय धीरे चलता था तो मनुष्य की आयु भी लम्बी होती थी। समय की तीव्र गति ने मनुष्यों की आयु भी कम कर दी है। ऐसी दशा में जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ निकाल देना केवल व्यक्तिगत अहित ही नहीं, सामाजिक हानि है, राष्ट्रीय हानि है।"

आचार्यजी बोले, "मैंने इसीलिए बहादुरसिंहजी को रोक लिया। अब जिस कार्य को करने का हम लोगों ने बीड़ा उठाया है वह बहुत बड़ा है। उसके सुचारु रूप से संचालन के लिए मुझे बहादुरसिंहजी जैसे ही योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी। हमारा सौभाग्य है कि हमें इनका सहयोग इस कठिन समय में मिल गया।"

"इसमें क्या सन्देह है ? आपने जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एक वर्ग विहीन समाज में बदल देने का बीड़ा उठाया, मैं समझती हूँ कि बहादुरसिंहजी का सहयोग आपको इस कार्य में मिला तो कार्य की प्रगति बहुत तीव्र हो उठेगी।" उमादेवी बोलीं।

उमादेवी की बात सुनकर आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "तुमने ठीक अनुमान लगाया उमा ! मैंने इसी कार्य के लिए बहादुरसिंहजी को रोका है।

मिस्टर सिन्हा, डाक्टर ओझा, प्रो० लक्ष्मीकांत, सरदार यशवन्तसिंह और मिस्टर गोंडप्पा भी पधार रहे हैं।"

हमें अब बहुत शीघ्र एक कनवेंशन बुलाने का निश्चय करना है और उसके अन्दर देश के सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित करना है और उन समस्याओं पर विचार करना है कि जिस प्रकार उन विभिन्न वर्गों की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों को समाप्त करके समाज को एकरूपता दी जा सके।

इस कार्य को करने में अनेक व्यक्तियों के स्वार्थ हमसे आकर टकराएँगे और वे हमारा खुलकर विरोध करेंगे। धर्म और जाति के महत्त्व और उनकी पवित्रता के नाम पर कुछ व्यक्ति ने स्वार्थ के तूफ़ानी वेग के साथ हमें परास्त करने पर उतारू होंगे, परन्तु उनका सामना करने की शक्ति हमारे अन्दर है।

मुझे विश्वास है कि हम उनका मुँह तोड़ उत्तर उन्हें दे सकेंगे और देश में एक ऐसे वर्गविहीन समाज की व्यवस्था कर सकेंगे जिसमें मानवता के आधार पर मानव का मूल्यांकन होगा, धर्म के आधार पर नहीं, जाति के आधार पर नहीं, पैसे के आधार पर नहीं।"

मैंने देखा कि आचार्यजी की बात सुनते-सुनते बहादुरसिंहजी के बदन में स्फूर्ति का संचार हो उठा। मानो मुरदा पड़े बदन में फिर से प्राणात्मा ने प्रवेश पा लिया।

उन्होंने बहुत ही सरल दृष्टि से आचार्यजी के चेहरे पर देखा और गम्भीर वाणी में बोले, "आचार्यजी! आपके वर्गविहीन समाज की कल्पना ही वास्तव में हमारे देश को स्वर्ग बना सकती है। जब तक राष्ट्र विभिन्न वर्गों में बँटकर चलेगा तब तक पारस्परिक राग-द्वेष और कलह का निपटारा नहीं हो सकता, राष्ट्र मजबूत नहीं बन सकता।"

उमादेवी बोलीं, "इसमें कोई सन्देह नहीं बहादुरसिंहजी! आपने सही दिशा में विचार किया है। राष्ट्र को सुसंस्कृत, सुसभ्य और सुदृढ़ बनाने के लिए वर्ग विहीन समाज की स्थापना नितान्त आवश्यक है। जब तक यह नहीं होगा तब तक राष्ट्र की प्रगति अधूरी ही रहेगी, उसमें गति नहीं आसकती, उसमें सहयोग की भावना नहीं आसकती और वह राष्ट्र समरसता के साथ आगे नहीं बढ़ सकता।

राष्ट्रीय जीवन में समरसता लाने के लिए वर्गविहीन समाज की कल्पना को मूर्त्त रूप देना नितान्त आवश्यक है।"

उमादेवी की बात सुनकर बहादुरसिंहजी ने गम्भीर दृष्टि से उमादेवी

के चेहरे पर देखा और फिर उनकी दृष्टि घूमती हुई आचार्यजी के चेहरे पर चली गई।

वह गम्भीरतापूर्वक बोले, "जी चाहता है आचार्यजी ! कि जीवन के अंतिम दिन आपकी इस कल्पना को फलीभूत करने में लगाकर अपने आज तक के जीवन की कालिख को धो डालूं।"

फिर कुछ ठहरकर बोले, "आपने मुझे भय्या सुमेरसिंह के साथ नहीं जाने दिया।···सो ठीक ही किया आपने। न मालूम मेरा दिल कब और कहाँ कमजोर पड़कर मुझसे कोई अनर्थ करा डालता !"

बहादुरसिंहजी की यह बात सुनकर आचार्यजी बोले, "तुम्हारे दिल की कमजोरी को मैं तुमसे अधिक पहचानता हूं बहादुर ! मैं तुम्हारी शहजोरी को भी जानता हूँ और तुम्हारी कमजोरी से भी परिचित हूँ। इसीलिए मैं तुम्हें अपने साथ स्टेशन से वापस ले आया। मुझे भय था कि कहीं तुमसे कोई अनर्थ न हो जाए।

राजा सुमेरसिंह एक शेर है, वास्तव में, जो जीवन में छल-छिद्र से सर्वदा अनभिज्ञ रहा है और तुम···तुम्हारा जीवन ही छल-छिद्र का रहा है। तुम दोनों के अनमेल जीवन को विधाता ने न जाने क्यों एक सूत्र में बाँध दिया ?"

आचार्यजी की बात सुनकर मैंने देखा कि बहादुरसिंह कुछ तिलमिला-से उठे। उनके चेहरे का रंग कुछ बदला और नेत्रों में कई-कई भाव आ-आकर तिरोहित हो गए। उन्होंने शून्य आकाश पर निराशापूर्ण दृष्टि फैलाकर कहा, "आचार्यजी ! आज यदि सच-सच कहूँ तो सच बात यही है कि मेरे जीवन के सब स्वप्न झूठे करने वाले एक मात्र आप हैं। मेरी असफलताओं के मूल में एक मात्र आपकी पैनी दृष्टि है। मेरी वर्त्तमान दशा के एकमात्र उत्तरदायी आप हैं।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं बहादुर ! परन्तु यह दशा तुम्हारी होनी

अनिवार्य ही थी। इसका कारण मैं बना या कोई अन्य बनता, पर तुम्हारी यह दशा अवश्य होती। इससे बदतर भी हो सकती थी तुम्हारी दशा और ऐसी भी हो सकती थी जब कोई सँभालने वाला ही न होता। आज धन्यवाद दो अपने भाग्य को कि यहाँ तीन-तीन व्यक्ति तुम्हें उस खंदक से निकालने के लिए सचेत बैठे हैं, जिसमें तुम गिर चुके हो।"

बहादुरसिंहजी ने करुण दृष्टि से हम सब की ओर देखा। एक पर-कटे पक्षी के समान वह थे इस समय। उनकी आत्मा अन्दर-ही-अन्दर छट-पटा रही थी। इस प्रकार की बातें जो वह आज शान्तिपूर्वक सुनते जा रहे थे, वह कभी जीवन में सुनने का आदी नहीं रहे। आचार्यजी के कहने को वह आज तक सर्वदा ही कानों पर से टालते आये थे। आपके शब्दों का कभी उन्होंने जीवन में मूल्यांकन किया होता तो शायद यह दिन देखना नसीब ही न होता!"

बहादुरसिंहजी के जीवन की उथल-पुथल और उससे प्रभावित उनकी भावभंगिमा का अध्ययन करके उमादेवी बोलीं, "बहादुरसिंहजी, आपने आचार्यजी पर ग़लत दोषारोपण किया और आचार्यजी ने भी यह ग़लत स्वीकार किया कि आपके स्वप्नों को झूठा बनाने के मूल में आचार्यजी हैं आपकी असफलताओं के कारण आचार्यजी हैं और आपकी वर्त्तमान स्थिति का उत्तरदायित्व भी इन्हींके सिर पर आता है।

मैं कहती हूँ कि यह सब ग़लत है। अपने विनाश के आप स्वयं कारण हैं। आपकी असफलताएँ आपकी अदूरदर्शिता पर आधारित हैं। मैंने आपके जीवन के घटना-क्रम पर दृष्टि डाली तो मुझे लग रहा है कि आपने सर्वदा वह किया है जो किसी भी दशा में सम्भव नहीं था।

आपने जीवन में कुछ अधिक कार्य नहीं किये। बहुत सरल है आपका जीवन। शायद आप उसे जटिल समझने के भ्रम में हों, परन्तु वास्तव में वह है बहुत स्पष्ट।"

उमादेवी की बात सुनकर हम सबने गम्भीर दृष्टि से उनके चेहरे पर देखा। एक क्षण को तो मैं समझ ही न पाया कि उमादेवी यह सब कह क्या रही हैं ? इतने बड़े छल-फ़रेब के पुतले का जीवन सरल है, यह क्या बात रही ?

उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "आपका सारा जीवन ऐयाशी और पैसे की कमी का संघर्ष है। आप पैसे वाले होते तो शायद ये दुर्बलताएँ आपके जीवन में न आतीं जो धनाभाव में आईं। तब शायद राजा सुमेरसिंह-जैसे मित्र को आप ठगकर रुपया प्राप्त करने का प्रयत्न न करते।

शशिप्रभा को प्राप्त करने का आपका प्रयास आकाश-कुसुम तोड़ने के ही समान था। आप नहीं तोड़ सके, इससे आचार्यजी का क्या सम्बन्ध ?

आपको वर्तमान दशा प्राप्त कराई आपके सेठजी ने, इसमें भी कहीं पर आचार्यजी नहीं आते। सो आप तो स्वयं ही अपने भाग्य के विधाता हैं और सच भी यही है कि हर व्यक्ति अपने भाग्य का विधाता स्वयं होता है।"

उमादेवी की बात सुनकर बहादुरसिंह मुस्कराकर बोले, "बहन उमा ! तुमने एक वाक्य में मेरे सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या प्रस्तुत कर दी। मेरा जीवन सचमुच 'ऐयाशी और धनाभाव' के संघर्ष की एक असफल कहानी है, एक बिना खिली गुलाब की कली है, जो खिलने से पूर्व ही कुम्हलाई और सूख गई।

जानती हो उमा, इसका कौन उत्तरदायी है ?"

"आप स्वयं इसके उत्तरदायी हैं," सतर्कता के साथ उमादेवी ने उत्तर दिया। अपनी असफलता के लिए अन्य किसी को दोषी ठहराना नादानी है।"

बहादुरसिंह जी चुप हो गए उमादेवी का यह स्पष्ट उत्तर सुनकर।

आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "बहादुरसिंह ! उमा को मैंने आज तक जीवन में एक दर्पण के समान स्नेह से सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। इस दर्पण की विशेषता यही है कि इसके सामने चेहरा करने पर बिम्ब स्पष्ट दिखाई दे जाता है। इसके अन्दर मैंने आज तक सर्वदा अपना सही चित्र देखा है। आज तुम्हारा सही रूप तुम्हें देखने का अवसर मिला है। परन्तु अभी यह बहिर रूप ही देखा है तुमने। यह शीशा व्यक्ति का बहिर रूप को उसके सम्मुख प्रस्तुत करके उसके अन्तर का भी ऐक्सरे प्रस्तुत करता है।"

आचार्यजी की बात सुनकर उमादेवी मुस्करा दीं।

बहादुरसिंहजी के मस्तिष्क से इस समय अन्य सब चीजें काफूर हो चुकी थीं। केवल दो ही शब्द उनके दिमाग में चक्कर लगा रहे थे, 'ऐयाशी और धनाभाव'—ये दोनों ही बेमेल चीजें हैं, उसके मन ने कहा। पैसा न हो तो ऐयाशी चल नहीं सकती और चलेगी भी तो जीवन में बरबादी बनकर ही आएगी।

बहादुरसिंहजी स्पष्ट शब्दों में बोले, "उमा बहन ! आपने सच ही कहा कि मेरे विनाश के मूल कारण मेरी ऐयाशी और मेरा धनाभाव ही हैं। मेरा मन व्यर्थ भय्या सुमेरसिंह, शशिप्रभा और आचार्यजी को दोषी ठहरा रहा था। आज तुमने मेरे मस्तिष्क में बँधी हुई एक गाँठ को खोल दिया। मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ।"

उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "कृतज्ञता की इसमें भला क्या बात है बहादुरसिंहजी ! यह तो स्पष्ट बात थी जो मैंने आपके सम्मुख रख दी।

तो क्या अब मैं समझ सकती हूँ कि आपने आचार्यजी, राजा सुमेरसिंह और शशिप्रभा को क्षमा कर दिया ?"

उमादेवी की बात सुनकर बहादुरसिंह जी ने बहुत ही विह्वल दृष्टि से उमादेवी के चेहरे पर देखा और हमने देखा कि उनकी आँखों में

आँसुओं का सागर लहरा उठा था। फिर भल्ल से उनके नेत्रों से बहकर अश्रु-धारा नीचे ढुलक पड़ी।

बहादुरसिंह ने ओवरकोट पहना हुआ था। उनके दोनों हाथ उनकी दोनों जेबों में पड़े थे। वह बहुत देर तक आँसू-भरे नेत्रों से उमादेवी की ओर देखते रहे और फिर गम्भीर होकर बोले, "उमादेवी ! उपदेश मैं आजतक बहुत सुनता आया हूँ, परन्तु परिस्थिति और समस्या का जो चित्र तुमने इस समय प्रस्तुत किया, वह अन्य कोई नहीं कर सका।"

इतना कहकर उन्होंने चेस्टर की दायीं जेब से हाथ निकाला तो उसमें एक रिवाल्वर था। रिवाल्वर बहादुरसिंह जी ने उमादेवी के कदमों पर फेंककर कहा, "उमा बहन ! तुमने मुझे एक महान् अनर्थ की दिशा की ओर बढ़ने से रोक कर चार व्यक्तियों के प्राण बचा लिये।"

मैं काँप उठा उनकी यह बात सुनकर।

आचार्यजी मुस्करा उठे। वह हँसकर बोले, "बहादुर, जो कुछ करने का तुम विचार करके आए थे, उसकी सूचना मुझे तुम्हारे अपने यहाँ पहुँचने से पूर्व मिल चुकी थी। यह रिवाल्वर जो तुमने उमा के पैरों पर फेंका है, मेरा, राजा साहब, शशिप्रभा और तुम्हारा अपना खून नहीं कर सकता था। उठाकर देखो तो जरा इसे।"

उमादेवी मुस्करा रही थीं।

बहादुरसिंहजी ने आश्चर्य-चकित होकर देखा कि सचमुच उनका रिवाल्वर कारतूसविहीन था और काम करने की क्षमता उसमें नहीं थी। वह एक साधारण लोहे का टुकड़ा मात्र था।

बहादुरसिंह लजा गया उसे अपने हाथ में उठाकर।

आचार्यजी मुस्कराकर बोले, "तुम्हारी मानसिक स्थिति का मैंने

उसी समय अध्ययन कर लिया था जब तुमने मेरे घर में प्रवेश किया था। तुम्हारे हर हाव-भाव को मैं बराबर पढ़ता रहा और उन उतार-चढ़ावों को देखता रहा जो तुम्हारे मानस-पटल पर आते और जाते रहे। परसों से आज तक तुम अनेक बार मानव बने हो और अनेक बार दानव। मैं देख रहा हूँ कि परसों से तुम्हारे अन्दर मानव और दानव का संघर्ष चल रहा है।"

तभी उमादेवी मुस्कराकर बोलीं, "यह कितनी प्रसन्नता की बात है आचार्यजी, कि अन्त में बहादुरसिंहजी के अन्दर के मानव ने इनके दानव को परास्त कर दिया।"

"परास्त वह अभी नहीं हुआ है उमा बहन! परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका और आचार्यजी का सामीप्य प्राप्त करके मैं उसपर विजय प्राप्त कर सकूँगा।

मेरी दशा इस समय भटके हुए उद्भ्रान्त पथिक की सी है। यदि आपने मुझे दुत्कारा नहीं, मेरी भूलों और मूर्खताओं पर झिड़का और फटकारा नहीं, मेरी दुर्बलताओं पर अपनी दया-दृष्टि का स्नेह उडेला तो कोई कारण नहीं है कि मेरे अन्दर का मानव मेरे अन्दर के दानव को परास्त न कर सके।"

उमादेवी प्रसन्नतापूर्वक बोलीं, "अवश्य कर सकेगा बहादुरसिंह जी! निश्चित रूप से कर सकेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका जीवन बहुत शीघ्र हमारे जीवन में घुल-मिल जाएगा। हम लोग जिस वर्गविहीन समाज की कल्पना करके चल रहे हैं उस कार्य को फलीभूत करने में आपका सक्रिय सहयोग और अनथक परिश्रम हमें मिलेगा।"

बहादुरसिंहजी ने आशा भरी दृष्टि से उमादेवी के चेहरे पर देखा और अनुभव किया कि वह एक ऐसी देवी के दर्शन कर रहे थे जो उनके अन्दर की कालिख को अपने सरल स्नेह से धो सकती है।

[२५]

आज आचार्यजी की कोठी पर उनके साथियों की चहल-पहल थी। उनके सभी साथी अपने-अपने प्रदेशों के कार्य की प्रगति के शुभ सन्देश लेकर आये हुए थे।

आचार्यजी ने बहादुरसिंहजी का सभी से परिचय कराया।

बहादुरसिंहजी ने इस बीच में अपनी योग्यता का जो परिचय दिया उसे देखकर सब दंग रह गए। नये भारत की जो नई रूपरेखा उन्होंने तय्यार की उसे पढ़कर उमादेवी और आचार्यजी के हृदय हर्ष से परिप्लावित हो उठे।

उमादेवी उसे पढ़कर मुस्कराती हुई बोलीं, "इतनी योग्यता लेकर भी आप आजतक हमलोगों से दूर ही बने रहे, यह देखकर हमें आज खेद हो रहा है।"

बहादुरसिंहजी मुस्कराकर बोले, "आज तक आप लोगों से दूर ही बना रहा, यही अच्छा हुआ उमादेवी ! वरना यदि कहीं तुम मेरे आज से पूर्व के जीवन की झपेट में आगई होतीं तो शायद आज मुझे अपने पास बिठलाने में भी तुम्हें संकोच होता !

मेरी योग्यता पर विलायत पहुँचते ही न जाने कैसी काली घटा छा गयी कि उसने मेरे जीवन को कलुषित कर दिया।

मैं जब विलायत गया था तो वैसा नहीं था जैसा वहाँ जाकर बन गया। यदि मेरा जीवन प्रारम्भ से ही वैसा रहा होता तो भय्या सुमेर-सिंह की दया-दृष्टि कभी मेरे ऊपर न पड़ती और वह कभी भी मुझे अपने साथ लेजाने को उद्यत न होते।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी सामने से आचार्यजी आते

दिखलायी दिए। उनके साथ राजा सुमेरसिंह, शशिप्रभा और श्रीमती मेरी भी थीं।

उन्हें देखकर उमादेवी और बहादुरसिंहजी खड़े होकर उस दिशा में बढ़ गए, जिधर से वे लोग आरहे थे।

बहादुरसिंहजी ने उन्हें प्रणाम करते हुए श्रीमती मेरी से क्षमा-याचना करके कहा, "भाभी ! आपके प्रति बहादुर से जो अन्याय बन पड़ा उसके लिए क्षमा-याचना करने योग्य तो मैं अपने को नहीं समझता परन्तु आपके दयापूर्ण स्वभाव से अपरिचित न होने के नाते मैं यह धृष्टता कर रहा हूँ।"

बहादुरसिंह की बात सुनकर श्रीमती मेरी मुस्कराकर बोलीं, "मिस्टर बहादुरसिंह ! यू आर हीयर ! आपने तो शक्ल ही नहीं दिखायी कभी। हमने राजा साहब से बहुत बार आपके विषय में पूछा, परन्तु कोई पता ही नहीं चला आपका।

कहिए, कैसी गुजर रही है ?"

बहादुरसिंहजी का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। उनकी पलकें भीग उठीं और डबडबाये नेत्रों से श्रीमती मेरी की ओर देखते हुए बोले, "आपके सम्मुख पड़ने का मेरा साहस ही नहीं हुआ कभी भाभी ! मैंने आपके साथ जो व्यवहार किया, उसके पश्चात् कौनसा मुँह लेकर आपके सम्मुख आता ?"

श्रीमती मेरी ने आगे बढ़कर बहादुरसिंहजी के दोनों कंधों पर अपने हाथ रखकर कहा, "आदमी ग़लतियों का पुतला है बहादुरसिंहजी ! परन्तु अपनी ग़लतियों को मान लेना भी बड़ी बात है।

इस बार राजा साहब ने जाकर जब आपके विषय में सब बातें मुझे बतलायीं तो मेरा मन आपसे मिलने के लिए उतावला हो उठा। मैं यहाँ तुमसे ही मिलने आयी हूँ।

और जब आचार्यजी के वर्गविहीन समाज की योजना मेरे पास पहुँची तो मुझे लगा कि वास्तव में यही वह कार्य है जिसकी आज भारतीय जन-जीवन को आवश्यकता है।

भारत आने पर आचार्यजी ने जो प्रथम सन्देश मुझे जीवन में दिया था उसका मैं आज तक पालन करती चली आरही हूँ और उस कार्य ने मेरे अव्यस्थित जीवन को व्यवस्था प्रदान की।

अब आपका नया सन्देश मेरे कानों में पड़ा तो मेरी आत्मा खिल उठी।"

श्रीमती मेरी की बात सुनकर उमादेवी आगे बढ़कर बोलीं, "श्रीमती मेरी को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस बार आचार्यजी की भावना और कल्पना को मूर्त्तरूप देने का समस्त कार्य बहादुरसिंहजी ने ही किया है। इस योजना का अक्षर-अक्षर आपने ही लिखा है।"

"अरे सच ! तब तो वास्तव में भारतीय जन-जीवन में यह क्रान्ति होकर रहेगी। जब बहादुरसिंहजी को भी इस भावना ने प्रभावित कर लिया तो फिर इससे बचकर निकल भागने वाला शायद कोई नहीं रहेगा। भारतीय जन-जीवन वर्गों में बँटकर पग-पग पर प्रगति से रुक रहा है। हर कदम पर ठोकर खाने का भय है और देश के चन्द स्वार्थी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए इन बन्धनों को बनाये रखने पर उतारू हैं। परन्तु अब यह स्थिति चल नहीं सकती। शिक्षा का प्रचार इन बन्धनों की रूढ़ियों को तोड़ डालने के लिए बड़े वेग से आगे बढ़ रहा है।"

उमादेवी बोलीं, "इसीलिए हमलोगों ने इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए देश के विद्यार्थी-वर्ग को ही इसका अग्रदूत चुना है। हमारी आशाएँ देश के उन्हीं युवकों पर केन्द्रित हैं जिनके मस्तिष्क इन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह कर रहे हैं।"

"एक्सीलेन्ट !" भावावेग में आकर श्रीमती मेरी की ज़बान से निकला।

इसके पश्चात् शशिप्रभा ने मेरा और उमादेवी का श्रीमती मेरी से परिचय कराया और श्रीमती मेरी उमादेवी से कौली भरकर उनसे सस्नेह मिलीं। दोनों ही गद्गद हो उठीं।

संध्या को एक विराट सभा का आयोजन हुआ। सभा में अन्य नागरिकों की अपेक्षा विद्यार्थियों का बहुत बड़ा समुदाय था और उन सब का नेतृत्व सतीश कर रहा था।

आज की सभा में वर्गविहीन समाज की व्यवस्था का नारा बुलन्द किया गया। धर्म, जाति और प्रदेश सम्बन्धी संकुचित भावनाओं का खुलकर विरोध किया गया। भाषाई झगड़ों की भी जी खोलकर धज्जियाँ बिखेरी गईं और एक ऐसे समाज की कल्पना की गई जिसका जीवन सम भावना को लेकर आगे बढ़े।

रात्रि को श्रीमती मेरी, राजासाहब और शशिप्रभा हमारे अतिथि बने।

उमादेवी की प्रशंसा में शशिप्रभा ने श्रीमती मेरी के सम्मुख आकाश-पाताल एक कर दिए।

उमादेवी मुस्करा कर बोलीं, "बस करो शशि बहन ! अधिक प्रशंसा करोगी तो मैं फूल कर कुप्पा हो उठूँगी और समझने लगूँगी कि मैं सचमुच वही और वैसी ही हूँ जैसा कुछ आप कह रही हैं। परन्तु मैं हूँ क्या, यह मैं स्वयं नहीं जानती।"

"तुम क्या हो उमा ! यह क्या मुझसे छिपा है ? तुम जैसी देवियों पर भारत को गर्व है। तुम्हारे त्याग, बलिदान और परिश्रम की कहानी स्वर्ण-अक्षरों में लिखी जाएगी। तुम वह हो जिसे जीवन में स्वार्थ कभी छू नहीं पाया, तुम वह हो कि जिसके भी सम्पर्क में तुम आयीं उसे तुमने मनुष्य बना दिया ।

बहादुरसिंहजी जैसे पाषाण को मानव बना देने की क्षमता एकमात्र तुम्हारे ही अन्दर थी। आचार्यजी अपने इतने लम्बे जीवन-काल में जिस सर्प को विष-मुक्त नहीं कर सके उसे तुमने दूध से धोकर साफ़ कर दिया।"

फिर उस दिन की पूरी घटना उमादेवी ने सुनाई जिस दिन बहादुरसिंह को आचार्यजी स्टेशन से राजा साहब और शशिप्रभा के साथ जाते-जाते लौटा लाये थे।

उमादेवी बोलीं, "मैं डर रही थी बहादुरसिंहजी की आप लोगों के साथ जाने की कल्पना करके और पछता रही थी कि आखिर क्यों मैंने वह सब होने दिया। तभी मैंने आचार्यजी को बहादुरसिंहजी के साथ स्टेशन से लौटते देखा। मेरी जान-में-जान आगई।"

"तो क्या इसके बाद भी बहादुर ने कोई गुल खिलाया ?" आश्चर्य-चकित होकर राजा सुमेरसिंह ने पूछा।

उमादेवी मुस्करा उठीं, और मुस्कारते-मुस्कराते ही उन्होंने वह सब किस्सा सुनाया जो उस दिन घटा था।

राजा साहब सुनकर दंग रह गए। वह मुस्कराकर बोले, "आचार्यजी की समझदारी का मैं जीवन में सर्वदा कायल रहा हूँ।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी आचार्यजी और बहादुरसिंह भी वहीं पर आगए। हम सब लोगों ने उनका खड़े होकर स्वागत किया। आचार्यजी कुरसी पर बैठते हुए बोले, "राजा साहब ! देखा आपने बहादुरसिंहजी की योग्यता का प्रमाण। आप सही व्यक्ति को चुनकर ही विलायत ले गए थे, परन्तु उसको दिशा न तो आप ही दे पाए और न मैं ही आज तक इस कार्य में सफल हुआ।"

इतना कहकर आचार्यजी ने उमादेवी की ओर देखा और सरल वाणी में बोले, "जो कार्य हमलोग आज तक करने में असमर्थ रहे उसे उमा ने पूरा किया।

मुझसे भारी भूल हुई कि यदि मैं आरम्भ में ही उमा को अपने साथ सहसपुर ले आया होता तो शायद पहले ही बहादुरसिंह के जीवन का रास्ता बदल गया होता।"

आचार्यजी की बात सुनकर शशिप्रभा मुस्कराकर बोलीं, "आपके आने से पूर्व मैं यही बात कह रही थी उमा से। आप सब साथियों को एक सूत्र में बाँधने का सेहरा आखिर उमा के ही सिर पर बँधा।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं।" आचार्यजी प्रसन्नतापूर्वक बोले। "मुझे विश्वास है कि हम सब साथी मिलकर अब उस महान् कार्य को सम्पन्न कर सकेंगे जिसकी कल्पना करके हम चले हैं। मुझे विश्वास है कि हम में से हर व्यक्ति 'सब का साथी' बनकर जीवन में अग्रसर होगा और जो-जो भी उसके जीवन में आएगा उसे वह साथी बनकर सहयोग देगा।"

× × × × × ×

आज सोते ही रहेंगे क्या ? देखिये न कितना दिन चढ़ आया। आज जैसी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न तो मैंने पहले कभी आपको नहीं देखा।,,

मैं आँखें मलता हुआ उठा तो उमा मुस्करा कर बोलीं, "क्या पहचाना नहीं मुझे ? किसी स्वप्न में खो रहे थे क्या ? मालूम देता है कोई सुनहला स्वप्न देख रहे थे।"

"बात तो सचमुच यही है उमा ! परन्तु तुमने भी मुझे उठाने में कमाल कर दिया।"

"वह कैसे ?" उमा ने मुस्कराकर पूछा।

"वह ऐसे कि उधर ड्राप सीन गिरा और इधर तुमने मेरी चादर का पल्ला खींचा। तनिक और पहले जगा देतीं तो सब आनन्द किर-किरा हो जाता। मेरा स्वप्न अधूरा ही रह जाता और फिर लाख प्रयास करने पर भी मैं उसका सिलसिला न जोड़ पाता।

मेरी बात सुनकर उमा मुस्करा कर बोलीं, "कैसी कमाल की बात कह रहे हैं आप भी। मैंने पहले कभी जीवन में आपका आनन्द किरकिरा किया है क्या कभी जो आज करती? आनन्द किरकिरा करने से मेरा क्या सम्बन्ध? मैं तो आपके आनन्द में वृद्धि ही कर सकती हूँ।"

उमा ने सच ही कहा। वह जिस दिन से भी मेरे जीवन में आई हैं उसने सर्वदा अमृत की धारा ही प्रवाहित की है, मेरे जीवन के आनन्द और उल्लास में वृद्धि ही की है।